इतिहास दिवाकर

त्रैमासिक अनुसंधान पत्रिका

वर्ष ३ अंक २ आषाढ़ मास कलियुगाब्द ५११२ जुलाई २०१०

मार्गदर्शक :
ठाकुर राम सिंह
डॉ० शिवाजी सिंह
चेतराम
इरविन खन्ना

सम्पादक :
डॉ० विद्या चन्द ठाकुर

सह सम्पादक
चेतराम गर्ग

सम्पादक मण्डल :
डॉ० रमेश शर्मा
डॉ०ओम प्रकाश शर्मा
प्रो० सतीश चन्द्र
सुश्री चारु मित्तल

टंकण एवं सज्जा :
अश्वनी कालिया

सम्पादकीय कार्यालय :
ठाकुर जगदेव चन्द स्मृति शोध संस्थान,
नेरी, गांव—नेरी, डाकघर—खगल
जिला—हमीरपुर—१७७००१ (हि०प्र०)
दूरभाष : ०१९७२—२०३०४४

मूल्यः
प्रति अंक —१५.०० रुपये
वार्षिक — ६०.०० रुपये

अनुक्रमणिका

सम्पादकीय

संवीक्षण

हमारे साधु—संत एवं समाज	ठाकुर राम सिंह	३
राष्ट्र रक्षक महाराज सुहेल देव	डॉ. परशुराम गुप्त	९
त्रिगर्त का कटोच वंश	डॉ. एस.के. बंसल	१३

जगत शक्ति

भगवती सती	कृष्णानन्द सागर	१७

जगत विभूति

शिल्प शास्त्र के आदि आचार्य विश्वकर्मा	रामशरण युयुत्सु	२०

सर्वेक्षण

हिमाचल प्रदेश में नाग देवता	डॉ. सूरत ठाकुर	३२

लोक धारा

विष्णु की देव समाज को शिक्षा	दीपक शर्मा	४२

गतिविधियाँ ४७

सम्पादकीय

सत्यं परं धीमहि

महर्षि वेदव्यास ने भागवत पुराण का समारम्भ करते हुए प्रथम स्कन्ध के प्रथम अध्याय के प्रथम श्लोक में यह वचन कहा है – **सत्यं परं धीमहि** अर्थात् हम परम सत्य का ध्यान करें। भागवत की यही मंगल कामना इतिहास में अपेक्षित है। ध्यानपूर्वक परम सत्य की गवेषणा कर के लिखे गए तथ्यपूर्ण वृत्तान्त से ही भारतीय ऋषि मुनियों की इतिहास की संकल्पना साकार होती है जिस संकल्पना में कहा गया है कि धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष के उपदेश सहित कथायुक्त प्राचीन चरितों एवं घटनाओं के वृत्तान्त को इतिहास कहा जाता है –

धर्मार्थकाममोक्षणामुपदेश समन्वितम्।
पूर्ववृत्तं कथायुक्तं इतिहासं प्रचक्षते।।

पुराण शास्त्रों में लोक मंगल की इसी उदात्त दृष्टि से इतिहास का प्रतिपादन हुआ है। अतएव भागवत पुराण की कथा को पूर्ण करते हुए महामुनि शुकदेव परम भागवत राजा परीक्षित् से कहते हैं –

कथा इमास्ते कथिता महीयसां
विताय लोकेषु यशः परेयुषाम्।
विज्ञानवैराग्यविवक्षया विभो
वचोविभूतिर्न तु पारमार्थ्यम्।।

भागवत पुराण– 12.3.14

अर्थात् इस संसार में बड़े-बड़े प्रतापी और महान् पुरुष हो चुके हैं जो इस लोक में अपने यश का विस्तार करके चले गए। उनकी यह इतिहास कथा विज्ञान और वैराग्य की प्राप्ति के लिए सुनायी गई है। ये केवल वाणी का वैभव और विलास नहीं है। इन में जीवन का परम अर्थ और तत्त्व समाहित है।

वाणी के विलास मात्र में नहीं, जीवन में परम अर्थ के विवेचन से ही इतिहास में सत्यं पर धीमहि का आलोक प्रज्ज्वलित है।

डॉ. विद्या चन्द ठाकुर

संवीक्षण

हमारे साधु संत एवं समाज

● ठा० राम सिंह

हमारी पुण्य भूमि भारत में सनातन धर्म की परम्परा के अनुसार समय-समय पर अनेक आचार्यों और साधु-सन्तों ने जन्म लिया है, परन्तु समाज में उनके बारे में यह मूल धारणा प्रचलित है कि वे साधु-संत प्रभु भक्ति में लीन रहते थे और उनका एकमात्र उद्देश्य रहा है आत्म कल्याण तथा समाज से उन्हें कोई लेना-देना नहीं था। परंतु यह विचार पूर्णत: असत्य है। समाज पर जब भी विदेशी या आंतरिक संकट आया है तो संतों ने समाज को जागृत करने और एकता के सूत्र में बान्ध कर समाज को जगाने के भरसक प्रयत्न किये हैं। समाज में आई कुरीतियों और विकृतियों को दूर कर धर्म के वास्तविक स्वरूप को जन भाषा में प्रचारित कर जन-जन तक पहुंचाया है। इतना ही नहीं साधारण स्थिति में भी साधु-सन्तों और सन्यासियों के जीवन का उद्देश्य चौबीसों घंटे समाज की निष्काम और निस्वार्थ भाव से सेवा करना है। भारत का इतिहास ऐसे उदाहरणों से भरा पड़ा है जब समाज विदेशी आक्रमणों से त्रस्त होकर निराश हो गया और उसे संकटों से मुक्ति का कोई उपाय नहीं सूझता था। उस काल में भी तो इन्हीं सन्तों ने समाज के संकटों का निवारण किया है। इस सम्बन्ध में एक महत्वपूर्ण ऐतिहासिक उदाहरण निम्नलिखित है :—

गैर क्षात्र दल का निर्माण : महाभारत के युद्ध में बहुत बड़ा नरसंहार हुआ और ज्ञान-विज्ञान की अपूरणीय क्षति हुई। अत: युद्ध के बाद देश में शान्ति के आन्दोलन जैन समाज और बुद्ध धर्म के रूप में प्रकट हुए। युद्ध से घृणा पैदा की गई। अत: दोनों आन्दोलन क्षात्र धर्म के विपक्ष में अहिंसा को परम धर्म मानते थे। इनके अहिंसा के प्रचार के कारण क्षात्र धर्म का ह्रास होना शुरू हुआ। बहुत से क्षत्रिय कुलों ने अपने क्षात्र धर्म को छोड़ कर अन्य काम शुरू कर दिए। उस समय समाज की आंतरिक और बाहरी सुरक्षा क्षत्रियों का ही दायित्व था। परिणाम स्वरूप देश की सुरक्षा के लिए खतरा पैदा हो गया।

अरब में इस्लाम का उदय : कलियुगाब्द ३७०२ तदानुसार ईस्वी की छठी शताब्दी में अरब में इस्लाम का उदय हुआ। उसने सैनिक शक्ति के आधार पर सारे मध्यपूर्व को जो शिव उपासक था, पादाक्रांत कर वहां की सभ्यता, संस्कृति, मान्यताओं और परम्पराओं को समाप्त कर इस्लामिक जीवन में परिवर्तित कर दिया। १०० वर्ष के अंदर ही इस्लाम की विजय वाहिनी स्पेन पहुंच गई और वहां से पूर्व की ओर मुड़ कर फ्रांस, इटली, अल्बेरुनिया, यूनान, तुर्की को रौंदते हुए यह वाहिनी २२५ वर्ष में चीन में प्रवेश कर गई।

तत्कालीन हिन्दू समाज : तत्कालीन हमारा देश हिन्दुस्थान के नाम से ४५०० मील लम्बा और इतना ही चौड़ा दुनिया का सब से बड़ा देश था। केवल क्षेत्रफल की दृष्टि से ही नहीं अपितु धन-धान्य और ज्ञान-विज्ञान की दृष्टि से भी यह देश दुनिया का सिरमौर था। इसकी पश्चिम की सीमा ताशकंद-यारकन्द से पूर्व में इण्डोनेशिया (हिन्दू एशिया) और उत्तर में मानसरोवर से लेकर दक्षिण में हिन्दू सागर तक थी। अरब से इस्लाम के आक्रमण हिन्दुस्थान पर जल मार्ग से शुरू हुए। उन्होंने सिन्ध को विजय कर लिया, परन्तु सुमेर राजपूतों ने कुछ समय के बाद सिन्ध पर अधिकार कर लिया। फिर ताशकन्द-यारकन्द की ओर से आक्रमण आरंभ हुए।

भारत का अंतिम सम्राट महाराजा हर्ष था। उसकी मृत्यु कलियुगाब्द ३७५० (ईस्वी सन् ६४८) में हो गयी। उनके बाद देश को राजनीतिक दृष्टि से जोड़ने वाला कोई राजनीतिक पुरुष नहीं था। परिणामस्वरूप देश ५०० के लगभग छोटे-छोटे हिन्दू राज्यों में बंट गया। इस अवस्था में इस्लाम ने आक्रमण के नाते हिन्दुस्थान में प्रवेश कर हिन्दुस्थान को 'दारूल हर्ब (युद्धक्षेत्र) कह कर हिन्दू समाज के विरूद्ध जिहाद घोषित कर दिया। परिणामस्वरूप १००० वर्षीय हिन्दू-मुस्लिम युद्ध शुरू हो गया।

नये क्षत्रिय वर्ग का निर्माण : समाज की सुरक्षा का दायित्व क्षत्रियों पर था, परंतु उनमें से बहुतों ने अपना दायित्व छोड़कर अन्य काम अपना लिए। क्षत्रियों के ह्रास होने से देश की सुरक्षा के लिए संकट उत्पन्न हो गया। उस समय के साधु-सन्तों ने राष्ट्र चिन्तकों के साथ विचार-विमर्श कर नये क्षत्रिय वर्ग के निर्माण की योजना बनाई। अत: सारे देश का सर्वेक्षण करने से ज्ञात हुआ कि केवल ३६ क्षत्रिय कुल ऐसे हैं जिन्होंने बौद्ध धर्म स्वीकार नहीं किया है। अत: सन्तों ने एक नये क्षत्रिय वर्ग के निर्माण करने के लिए पवित्र आबू पर्वत पर एक राष्ट्रीय चिंतन वर्ग का आयोजन किया और उन ३६ राजकुमारों के प्रतिनिधियों को आबू पर्वत के चिंतन वर्ग में आमन्त्रित किया। उनके अतिरिक्त अन्य राष्ट्र चिन्तकों को भी चिंतन वर्ग में बुलाया गया। वहां परस्पर विचार विमर्श कई दिनों तक चलता रहा। अंत में संतों के वर्ग में आये क्षत्रिय कुलों में ४ कुलों — चौहान, परमार, प्रतिहार, सोलंक नाम के नये क्षत्रिय वर्ग—राजपूत को गठित करने के लिए चुना। आबू पर्वत पर हवन सतत् रूप से चल रहा था। हवन की लपटों को साक्षी मान इन चार कुलों की दीक्षा हवन की अग्नि के समक्ष हुई। इस कारण इन्हें ४ अग्निकुल राजपूत कहा गया। क्षत्रिय नाम बदनाम हो चुका था। अत: उसके स्थान पर राजपूत शब्द प्रचलित किया गया। इन चार अग्निकुलों के क्षात्र वर्ग ने ६०० वर्ष तक इस्लाम को रोके रखा और एक पग भी आगे बढ़ने नहीं दिया। इसी कारण ईस्वी सन् ६०० से सन् १००० तक के कालखण्ड को राजपूत युग कहा जाता है। तत्कालीन समाज के प्रति संतों का यह बहुत बड़ा योगदान ही नहीं उपकार है। जहां इस्लाम की विधर्मी वाहिनी २२५ वर्ष में चीन पहुंच गयी, हिन्दुस्थान में इस राजपूत शक्ति ने अपने बाहुबल और वीरता से ६०० वर्ष तक इसे रोके रखा।

संतों का यह अविस्मरणीय योगदान है।

राजपूत युग :– इस राजपूत शक्ति का अंतिम सम्राट पृथ्वी राज चौहान था। उसने तत्कालीन देश की रक्षा के लिये जम्मू से लेकर गुजरात तक एक सुरक्षा पंक्ति बनाई थी। इस्लाम की सेनायें आती गयीं और इस सुरक्षा पंक्ति से टकराकर पराजित होती गईं। कोई इतिहासकार कहता ऐसा ७ बार हुआ। कोई कहता १७ बार हुआ। परंतु जब तराईन के युद्ध में पृथ्वीराज चौहान, राजपूत शक्ति का अंतिम सम्राट अपने सगे संबंधी जम्मू के राजा की देशद्रोहिता के कारण हार गया तो वह सुरक्षा पंक्ति टूट गयी और १०० वर्षों में इस्लाम की सेनायें दक्षिण में हिन्दू सागर के तट पर पहुंच गयीं और उत्तर पूर्व में इस्लाम की जिहादी सेना ने असम के हिन्दू राज्य की सीमा पर दस्तक दी। यह जिहादी संघर्ष केवल राजनीतिक न होकर धार्मिक और सांस्कृतिक भी था। दिल्ली पर इस्लाम का अधिकार होने के कारण धर्मांतरण प्रारंभ हुआ। इस्लामीकरण सेना और राज्य के संरक्षण में शुरू हुआ। मुसलमान सुल्तानों के अमानवीय अत्याचार, हिन्दू समाज पर शुरू हुए। उदाहरणार्थ अलाऊदीन खिलजी के विदेशी राज्य में हिन्दू घोड़े पर नहीं चढ़ सकता था। हिन्दू सोने चान्दी के बर्तन नहीं रख सकता था। हिन्दुओं के धार्मिक उत्सवों पर प्रतिबंध लगा दिये। विवाह शादियों पर आक्रमण होने लगे। मंदिरों और तीर्थस्थलों को अपवित्र किया जाने लगा। अत: देश पर इस्लाम के अत्याचारों से समाज में निराशा का वायुमण्डल व्याप्त हो गया। संघर्ष चल रहा था परंतु देश को राजनीतिक दृष्टि से जोड़ने वाला कोई राष्ट्र पुरुष नहीं था।

इस सर्वनाश से समाज, उसके धर्म, संस्कृति और सभ्यता की रक्षा के लिए संत पुन: मैदान में आए। सोचने लगे समाज की रक्षा कैसे की जाए। राजनीतिक दृष्टि से मुसलमानों का राज्य दिल्ली में स्थापित हो गया था। छोटे-छोटे हिन्दू राज्य संघर्षरत थे, परंतु सारे समाज को राजनीतिक दृष्टि से जोड़ने वाला कोई नेता नहीं था। इसलिए संतों ने राजनीतिक संघर्ष का रास्ता छोड़ दिया।

उन्होंने तब सामाजिक दृष्टि से विचार किया कि क्या कोई ऐसा सामाजिक महापुरुष है जो समाज को जोड़ सकता है? परंतु निराशा ही हुई। अंत में संतों ने और तत्कालीन राष्ट्र चिंतकों ने विचार-विमर्श किया कि इस प्रकार की संकटपूर्ण अवस्था में समाज को जगाने का परम्परागत केवल एक मार्ग है — धर्म जागरण। इस में स्थायित्व है। अत: धर्म जागरण करने का निर्णय हो गया, परंतु इसका प्रमुख नेता कौन हो? उनका ध्यान शंकराचार्य की ओर गया कि क्या वे धार्मिक आन्दोलन का नेतृत्व कर सकते हैं ? शीघ्र ही उनके ध्यान में आया कि शंकराचार्य तो आपस में एक साथ मिलते नहीं हैं। वह नेतृत्व कैसे करेंगे ? जब तत्कालीन समाज से उनको नेता प्राप्त करने में निराशा हुई तब उनकी दृष्टि भारत के इतिहास की ओर गयी कि क्या इतिहास में ऐसा कोई महापुरुष है जिसको नेता के रूप में सामने लाया जाए ?

धार्मिक आन्दोलन के लिए दो महापुरुषों का चयन : अत: इतिहास में खोज पड़ताल कर संतों ने दो महापुरुषों को नेता के रूप में सामने लाने का निर्णय किया। एक श्री रामचन्द्र और दूसरे श्री कृष्ण। प्रभु रामचन्द्र मर्यादा पुरुषोत्तम थे। श्री कृष्ण अर्जुन को गीता में अपनी विभूतियां बताते हुए कहते हैं – हे अर्जुन! शस्त्र धारियों में मैं राम हूं। एक बार श्री राम चन्द्र अकेले १४००० शत्रुओं से घिर गए। उन्होंने अकेले ही १४००० शत्रुओं को मौत की नीन्द सुला दिया। सन्त समाज ने तय किया कि ऐसे महापुरुष को समाज के सामने लाया जाए। प्रभु रामचन्द्र ने यदि १४००० शत्रुओं को अकेले मार गिराया तो तुम क्या १४ शत्रुओं को पराजित नहीं कर सकते हो? इस प्रकार प्रचार शुरू हुआ।

दूसरे महापुरुष श्री कृष्ण १६ कला संपूर्ण थे। वह विश्व के श्रेष्ठ पहलवान थे और तत्कालीन समाज के विलक्षण नेता थे। जब कुरुक्षेत्र में पांडवों और कौरवों की सेनायें युद्ध के लिये आमने-सामने खड़ी हो गयीं तो श्री कृष्ण ने युधिष्ठिर को कहा – इस युद्ध में सर्वनाश होने वाला है। अत: मैं फिर एक बार दुर्योधन के पास जाना चाहता हूं ताकि युद्ध को टाला जा सके और इतिहास में यह न लिखा जाये कि युद्ध को रोकने के लिये अंतिम प्रयास नहीं हुआ।

युधिष्ठिर ने कहा श्री कृष्ण! दुर्योधन महापापी है। वह आपको कैद कर लेगा। फिर हमारा क्या होगा ? अर्जुन और बाकी सभी ने भी जाने से मना किया। तब श्री कृष्ण ने कहा – "मैं तुम सभी को आश्वासन देता हूं कि यदि दुर्योधन आदि मुझे पकड़ने का प्रयत्न करेंगे तो तुम को लड़ना नहीं पड़ेगा। मैं अकेला ही उनकी सारी सेना को समाप्त कर दूंगा।" यह कह कर श्रीकृष्ण मिलने गये। दुर्योधन नहीं माना और श्रीकृष्ण को निवेदन किया कि महाराज रात को यहीं विश्राम करें, परंतु श्री कृष्ण ने कहा – "नहीं मैं गंगा के पार विदुर की कुटिया में जा रहा हूँ।"

ऐसे अद्‌भुत गुणों से युक्त महापुरुषों के चरितों को समाज के सामने लाया गया। उनकी भक्ति से धर्म जागरण शुरू हुआ। भक्ति से शक्ति उत्पन्न करने की योजना बनी। परिणाम स्वरूप इस भक्ति आन्दोलन से एक महान हिन्दू जागरण हुआ। हर प्रांत में भक्ति आन्दोलन के आचार्य प्रकट हुए। समाज की निराशा और हताशा इत्यादि सब समाप्त हुई।

इस्लाम के साथ संघर्ष दिन और रात चल रहा था, परंतु १६वीं शताब्दी तक हिन्दू हर मोर्चे पर हार रहा था और मुसलमान हर मोर्चे पर जीत रहा था। १७वीं शताब्दी में भारत के इतिहास में एक चमत्कार हुआ कि हिन्दू हर मोर्चे पर जीत रहा है और मुसलमान हर मोर्चे पर हार रहा है। इस चमत्कार का कारण था भक्ति आन्दोलन के द्वारा उत्पन्न महान हिन्दू जागरण। उदाहरणार्थ पंजाब में गुरु की भक्ति और तपस्या के आधार पर महाराजा रणजीत सिंह के राज्य की स्थापना हुई और उनके सेनापति हरि सिंह नलवा ने मुगल शासन को समाप्त कर काबुल में भगवा लहराया।

उधर दक्षिण में महाराष्ट्र में भक्ति आन्दोलन के संतों की २०० वर्षों की तपस्या

के कारण शिवाजी महाराज का प्रकटीकरण हुआ। उसने मुगलों के साम्राज्य के विरूद्ध २५५ युद्ध किए और यह उनका युद्ध कला का कीर्तिमान है कि वह न तो हारे और न ही जख्मी हुए। उसने महापापी औरंगजेब की छाती के ऊपर पांव रख कर महाराष्ट्र में ३६० मील लम्बा और १५० मील चौड़ा हिन्दू साम्राज्य स्थापित किया। शिवाजी की मृत्यु के १०० वर्ष पश्चात् शिवाजी ने जिस हिन्दू साम्राज्य की स्थापना की थी उसकी सेनाएं काबुल तक पहुंच गयीं और उन्होंने वहां भगवा लहराया। मुगल बादशाह उस हिन्दू शक्ति, जिसको मराठा शक्ति का साम्राज्य कहा जाता है, उसकी शरण में आ गया और भारत की खोई हुई प्रभुसत्ता फिर से हिन्दुओं के हाथ में आ गयी। भक्ति आन्दोलन से उत्पन्न हुई महान हिन्दू शक्ति ने इस्लाम को उखाड़ फैंका।

उधर पूर्व में विशेषत: असम पर मुगलों ने १७ बार आक्रमण किये, परंतु प्रत्येक बार या तो उनका सेनापति मारा गया या पराजित होकर भाग गया। इस प्रकार असम के हिन्दू राज्य के वीरों ने इस्लाम नहीं फैलने दिया और सारे विश्व में इस्लामीकरण की योजना को पूर्णत: पराजित करने में सफल हुए। वैश्विक इस्लामीकरण की पश्चिमोत्तर वाहिनी २२५ वर्ष में चीन पहुंच गयी थी। दूसरी वाहिनी पश्चिम से हिन्दुस्थान के मार्ग से प्रशांत महासागर में चीन की विजयी मुस्लिम वाहिनी को मिलने वाली थी, परन्तु हिन्दुस्थान का इस्लामीकरण नहीं हो सका और भक्ति आन्दोलन से उत्पन्न हुई महान हिन्दू शक्ति के वीरों ने इस्लाम की वैश्विक इस्लामीकरण की योजना को धराशाई कर दिया। इतिहासकारों ने इसका ठीक से प्रतिपादन नहीं किया है, परंतु इस्लाम ने इस ऐतिहासिक तथ्य को स्वीकार किया है। भक्ति आन्दोलन के आचार्यों, साधु-संतों का समाज के प्रति यह एक महान योगदान है। इन्हीं संतों के उपदेशों, प्रवचनों, कीर्तनों, भजनों, धार्मिक सम्मेलनों से सारा हिन्दू समाज एक राष्ट्र के नाते खड़ा हुआ और इस्लाम के मुगल साम्राज्य को उखाड़ फैंका। इसका प्रमाण मुस्लिम कवि हामी की कविता की ये पंक्तियां हैं —

वह दीने हिजाज़ी का बेबाक बेड़ा
निशान जिसका अक्साए आलम में पहुंचा
मुकाबिल हुआ कोई खतरा न जिसका
न अम्मान में अटका न सुरजहान में ठिठका
किया पे जिसने पार सातों समुन्दर
वह डूबा गंगा के दहाने में आकर।

संतों की उत्पत्ति : संतों की उत्पत्ति का इतिहास बहुत पुराना है। भारतीय इतिहास के आदि युग में आज से १,९७,३९,४९,१११ वर्ष पूर्व चैत्र शुक्ल प्रतिपदा को इस पृथ्वी पर प्रथम मानव ब्रह्माजी के रूप में प्रकट हुआ। ब्रह्माजी ने सृष्टि रचना का श्री गणेश करने के लिए ईश्वर की प्रेरणा से अपने संकल्प से ४ मानस पुत्र उत्पन्न किये। इनके नाम हैं —

सनक, सनन्दन, सनत कुमार, सनातन। उनको ब्रह्माजी ने प्रजापति के नाते कार्य करने के लिए कहा, परंतु उन्होंने ब्रह्माजी को निवेदन किया कि वे गृहस्थ आश्रम के चक्र में पड़ना नहीं चाहते। वे आजीवन ब्रह्मचारी रहकर वेदों का प्रचार और मानवों की सेवा करेंगे। ब्रह्माजी चिन्तित हो गए कि श्री गणेश ही गलत हुआ, परंतु उन्होंने परमात्मा की प्रेरणा से अपने सात और मानसपुत्र पैदा किये। उन्हीं से आगे मानव सृष्टि का विस्तार हुआ।

सनक, सनन्दन, सनत कुमार और सनातन मानव कुल के प्रथम ऐतिहासिक पुरुष हैं। उन्होंने सारा जीवन ब्रह्मचारी रह कर अपने समाज और मानवता की निस्वार्थ और निष्काम सेवा करने का आदर्श समाज के सामने रखा। इन्हीं की परम्परा में आगे चल कर साधु, सन्यासी, महंत, संत और साधु हुए। उन्होंने इन्हीं ४ प्रथम ऐतिहासिक पुरुषों द्वारा स्थापित समाज सेवा का व्रत धारण किया। अत: साधु, संत, सन्यासी, महंत, प्रचारक इत्यादि सभी शब्द समानार्थक हैं। यह सभी अपने समाज और मानवता के प्रति पूर्णत: समर्पित हैं। वास्तव में यह साधु संत समाज की प्राण वायु हैं। यथा – हम सारा दिनभर काम करते हैं और रात को सो जाते हैं। शरीर शीतल हो जाता है। बुद्धि अचेत हो जाती है। फिर हम प्रात: कैसे उठ पड़ते हैं? हम रात को सो जाते हैं, परंतु हमारे शरीर में एक यंत्र है। वह कदापि सोता नहीं है। उसका नाम है 'हृदय'। यदि वह किसी कारण सो जाए तो प्रात: राम नाम सत हो जायेगा। अत: प्रत्येक समाज में हृदय की भान्ति कार्य करने वाले लोगों का समूह होता है जो सदैव जागृत रहता है। समाज की यह संजीवनी शक्ति है। अत: सारे साधु संत प्रचारक यह हमारे समाज के प्राण वायु है। संत या सन्यासी या साधु वह होता है जो समाज के प्रति पूर्णत: समर्पित होता है और वे चौबीसों घण्टे काम करना अपना कर्त्तव्य समझते हैं। हमारे समाज में यह साधु अथवा सन्यासी सतत रूप से देश का प्रवास करते हैं और अपने शिष्यों की समस्याओं का समाधान करते हैं। ऐसे अनेक संतों ने अपने देश के पुण्य स्थानों पर आश्रम बनाये हैं। उन आश्रमों के संतों के शिष्य भगवान का भजन करते हैं। अपने गुरुओं के उपदेश सुनते हैं। गुरु पूर्णिमा के दिन अपने देश के पवित्र तीर्थों यथा हरिद्वार, मथुरा, वृन्दावन, काशी, प्रयाग, गया, जगन्नाथपुरी आदि में हजारों की संख्या में लोग एकत्रित होकर अपने गुरुओं के प्रति श्रद्धा व्यक्त करते हैं। इन्हीं साधु संतों और सन्यासियों के कारण हमारा अग्रजन्मा हिन्दू समाज आज भी ८५ करोड़ की जनसंख्या में विद्यमान है।

राष्ट्र रक्षक महाराजा सुहेल देव

● डॉ. परशुराम गुप्त

कलियुगाब्द ४१०३ से ४१२७ (१००१ ई० से लेकर १०२५ ई०) तक महमूद गजनवी ने भारत वर्ष को लूटने की दृष्टि से १७ बार आक्रमण किये तथा अन्त में मथुरा, थानेसर, कन्नौज व सोमनाथ के अति समृद्ध मंदिरों को लूटने में सफल रहा। सोमनाथ की लड़ाई में उसके साथ उसके भानजे सैयद सालार मसूद गाजी ने भी भाग लिया था। कलियुगाब्द ४१३२ (१०३० ई०) में महमूद गजनवी की मृत्यु के बाद उत्तर भारत में इस्लाम का विस्तार करने की जिम्मेदारी मसूद ने अपने कन्धों पर ली, लेकिन कलियुगााब्द ४१३६ (१०जून, १०३४ ई०) को बहराईच की लड़ाई में वहां के शासक महाराजा सुहेल देव के हाथों वह डेढ़ लाख जेहादी सेना के साथ मारा गया। इस्लामी सेना की इस पराजय के बाद भारतीय शूरवीरों का ऐसा आतंक विश्व में व्याप्त हो गया कि उसके बाद आने वाले १५० वर्षों तक किसी भी आक्रमणकारी को भारत वर्ष पर आक्रमण करने का साहस ही नहीं हुआ।

ऐतिहासिक सूत्रों के अनुसार श्रावस्ती नरेश राजा प्रसेनजित ने बहराइच राज्य की स्थापना की थी जिसका प्रारंभिक नाम ब्रह्माइच था। इसी कारण इन्हें ब्रह्माइच नरेश के नाम से भी सम्बोधित किया जाता था। इन्हीं महाराजा प्रसेनजित को माघ माह की बसंत पंचमी के दिन कलियुगाब्द ४०९२ (९९०ई०) को एक पुत्र रत्न की प्राप्ति हुई जिसका नाम सुहेल देव रखा गया। अवध गजेटीयर के अनुसार इनका शासन काल कलियुगाब्द ४१२९ से ४१७९ (१०२७ ई० से १०७७) तक स्वीकार किया गया है। वे जाति के पासी थे, राजभर अथवा जैन, इस पर सभी एकमत नहीं है।

महाराजा सुहेलदेव का साम्राज्य पूर्व में गोरखपुर तथा पश्चिम में सीतापुर तक फैला हुआ था। गोण्डा, बहराइच, लखनऊ, बाराबंकी, उन्नाव व लखीमपुर इस राज्य की सीमा के अन्तर्गत समाहित थे। इन सभी जिलों में राजा सुहेल देव के सहयोगी पासी राजा राज्य करते थे जिनकी संख्या २१ थी । ये थे — १. रायसायब २. रायरायब ३. अर्जुन ४. भग्गन ५. गंग ६. मकरन ७. अंकर ८. करन ९. बीरबल १०. जयपाल ११. श्रीपाल १२. हरपाल १३. हरकरन १४. हरखू १५. नरहर १६. भल्लर १७. जुधारी १८. नारायण १९. भल्ला २०. नरसिंह तथा २१. कल्याण। ये सभी वीर राजा महाराजा सुहेल देव के आदेश पर धर्म एवं राष्ट्र-रक्षा हेतु सदैव आत्मबलिदान देने के लिए तत्पर रहते थे। इनके अतिरिक्त राजा सुहेल देव के दो भाई बहरदेव व मल्लदेव भी थे जो अपने भाई के ही समान वीर थे तथा पिता की भांति उनका सम्मान करते थे ।

महमूद गजनवी की मृत्यु के पश्चात पिता सैयद सालार साहू गाजी के साथ एक बड़ी जेहादी सेना लेकर सैयद सालार मसूद गाजी भारत की ओर बढ़ा। उसने दिल्ली पर आक्रमण किया। एक माह तक चले इस युद्ध ने सालार मसूद के मनोबल को तोड़कर रख दिया वह हारने ही वाला था कि गजनी से बख्तियार साहू, सालार सैफुदीन, अमीर सैयद एजाजुदीन, मलिक दौलत मिंया, रजव सालार और अमीर सैयद नसरूल्लाह आदि एक बड़ी घुड़सवार सेना के साथ मसूद की सहायता को आ गए। पुन: भयंकर युद्ध प्रारम्भ हो गया, जिसमें दोनों ही पक्षों के अनेक योद्धा हताहत हुए। इस लड़ाई के दौरान राय महीपाल व राय हरगोपाल ने अपने घोड़े दौड़ाकर मसूद पर गदा से प्रहार किया जिससे उसकी आंख पर गम्भीर चोट आई तथा उसके दो दांत टूट गए। हालांकी ये दोनों ही वीर इस युद्ध में लड़ते हुए शहीद हो गए लेकिन उनकी वीरता व असीम साहस अद्वितीय था।

मेरठ का राजा हरिदत्त मुसलमान हो गया तथा उसने मसूद से सन्धि कर ली। यही स्थिति बुलन्द शहर व बदायूं के शासकों की भी हुई। कन्नौज का शासक भी मसूद का साथी बन गया। अत: सालार मसूद ने कन्नौज को अपना केन्द्र बनाकर हिन्दुओं के तीर्थ स्थलों को नष्ट करने हेतु अपनी सेनाएं भेजना प्रारम्भ किया। इसी क्रम में मलिक फैसल को वाराणसी भेजा गया तथा स्वयं सालार मसूद सप्तऋषि (सतरिख) की ओर बढ़ा। ***मिरआते मसूदी*** के विवरण के अनुसार सतरिख (बारावंकी) हिन्दुओं का एक बहुत बड़ा तीर्थ स्थल था। एक किंवदंति के अनुसार इस स्थान पर भगवान राम व लक्ष्मण ने शिक्षा प्राप्त की थी। यह सात ऋषियों का स्थान था, इसी लिए इस स्थान का नाम ***सप्तऋषि*** पड़ा था, जो धीरे-धीरे ***सतरिख*** हो गया।

सालार मसूद विलग्राम, मल्लावा, हरदोई, सण्डीला, मलिहाबाद, अमेठी व लखनऊ होते हुए सतरिख पहुंचा। उसने अपने गुरु सैयद इब्राहीम बाराहजारी को धुन्धगढ़ भेजा क्योंकि धुन्धगढ़ के किले में उसके मित्र मोहम्मद सरदार को राजा रायदीन दयाल व अजय पाल ने घेर रखा था । इब्राहीम बाराहजारी जिधर से गुजरते गैर मुसलमानों का बचना मुश्किल था। बचता वही था जो इस्लाम स्वीकार कर लेता था । ***आइनये मसूदी*** के अनुसार –

निशान सतरिख से लहराता हुआ बाराहजारी का ।
चला है धुन्धगढ़ को काफिला बाराहजारी का।
मिला जो राह में मुनकिर उसे दे उसे दोजख में पहुंचाया।
बचा वह जिसने कलमा पढ़ लिया बाराहजारी का।

इस लड़ाई में राजा दीनदयाल व तेजसिंह बड़ी ही वीरता से लड़े लेकिन वीरगति को प्राप्त हुए। परन्तु दीनदयाल के भाई राय करनपाल के हाथों इब्राहीम बाराहजारी मारा गया। कड़े के राजा देव नारायन और मानिकपुर के राजा भोजपात्र ने एक नाई को सैयद सालार मसूद के पास भेजा कि वह विष से बुझी नहन्नी से उसके नाखून काटे, ताकि सैयद सालार मसूद की इहलीला समाप्त हो जाये लेकिन इलाज से वह बच गया। इस सदमें से उसकी माँ खुतुर मुअल्ला चल बसी

इस प्रयास के असफल होने के बाद कड़े मानिकपुर के राजाओं ने बहराइच के राजाओं को संदेश भेजा कि हम अपनी ओर से इस्लामी सेना पर आक्रमण करें और तुम अपनी ओर से। इस प्रकार हम इस्लामी सेना का सफाया कर देंगे। परन्तु संदेशवाहक सैयद सालार के गुप्तचरों द्वारा बन्दी बना लिए गया। इन संदेशवाहको में दो ब्राह्मण और एक नाई था। ब्राह्मणों को तो छोड़ दिया गया लेकिन नाई को फांसी दे दी गई। इस भेद के खुल जाने पर मसूद के पिता सालार साहू ने एक बड़ी सेना के साथ कड़े मानिकपुर पर धावा बोल दिया। दोनों राजा देवनारायण व भोजपात्र बड़ी वीरता से लड़े लेकिन परास्त हुए। इन राजाओं को बन्दी बनाकर सतरिख भेज दिया गया। वहाँ से सैयद सालार मसूद के आदेश पर इन राजाओं को सालार सैफुद्दीन के पास बहराइच भेज दिया गया। जब बहराइच के राजाओं को इस बात का पता चला तो उन लोगों ने सैफुद्दीन को घेर लिया। इस पर सालार मसूद उसकी सहायता हेतु बहराइच की ओर आगे बढ़े। इसी बीच उसके पिता सालार साहू का निधन हो गया।

बहराइच के पासी राजा भगवान सूर्य के उपासक थे। बहराइच में सूर्य कुण्ड पर स्थित भगवान सूर्य की मूर्ति की वे पूजा करते थे। उस स्थान पर प्रत्येक वर्ष ज्येष्ठ मास में प्रथम रविवार, जो बृहस्पतिवार के बाद पड़ता था, एक बड़ा मेला लगता था। यह मेला सूर्य ग्रहण, चन्द्रग्रहण तथा प्रत्येक रविवार को भी लगता था। वहां यह परम्परा काफी प्राचीन थी। बालार्क ऋषि के व भगवान सूर्य के प्रताप से इस कुण्ड में स्नान करने वाले कुष्ठ रोग से मुक्त हो जाया करते थे।

सालार मसूद के बहराइच आने के समाचार पाते ही बहराइच के राजागण — राजा रायब, राजा सायब, अर्जुन, भीखन, गंग, अंकर, करन, बीरबर, जयपाल, श्रीपाल, हरपाल, हरखू, जोधारी व नरसिंह महाराजा सुहेल देव के नेतृत्व में लामबन्द हो गये। ये राजा गण बहराइच शहर के उत्तर की ओर लगभग आठ मील की दूरी पर भकला नदी के किनारे अपनी सेना सहित उपस्थित हुए। अभी ये युद्ध की तैयारी कर ही रहे थे कि सालार मसूद ने उन पर रात्रि में आक्रमण (शबखून) कर दिया। मगरिब की नमाज के बाद अपनी विशाल सेना के साथ वह भकला नदी की ओर बढ़ा और उसने सोती हुई हिन्दू सेना पर आक्रमण कर दिया। इस अप्रत्याशित आक्रमण में दोनों ओर के अनेक सैनिक मारे गए लेकिन बहराइच की इस पहली लड़ाई में सालार मसूद विजयी रहा ।

पहली लड़ाई में परास्त होने के पश्चात पुन: अगली लड़ाई हेतु हिन्दू सेना संगठित होने लगी तथा उन्होंने रात्रि आक्रमण की संभावना पर ध्यान नहीं दिया। उन्होंने राजा सुहेलदेव के परामर्श पर आक्रमण के मार्ग में हजारों विषबुझी कीलें अवश्य धरती में छिपा कर गाड़ दीं। ऐसा रातों रात किया गया। इसका परिणाम यह हुआ कि जब मसूद की घुड़सवार सेना ने पुन: रात्रि आक्रमण किया तो वे इनकी चपेट में आ गए। हालांकि हिन्दू सेना इस युद्ध में भी परास्त हो गई लेकिन इस्लामी सेना के एक तिहाई सैनिक इस युक्ति प्रधान युद्ध में मारे गए। भारतीय इतिहास में इस प्रकार युक्ति पूर्वक लड़ी गई यह एक अनूठी लड़ाई थी।

दो बार धोखे का शिकार होने के बाद हिन्दू सेना सचेत हो गई तथा महाराजा सुहेलदेव के नेतृत्व में निर्णायक लड़ाई हेतु तैयार हो गई। कहते हैं कि इस युद्ध में प्रत्येक हिन्दू परिवार से युवा हिन्दू इस लड़ाई में सम्मिलित हुए। महाराजा सुहेल देव के शामिल होने से हिन्दुओं का मनोबल बढ़ा हुआ था। लड़ाई का क्षेत्र चिन्तौरा झील से हठीला और अनारकली झील तक फैला हुआ था। जून कलियुगाब्द ४१३६ (१०३४ ई०) को हुई इस लड़ाई में सालार मसूद ने दाहिने पार्श्व (मैमना) की कमान मीरनसरूल्ला को तथा बायें पार्श्व (मैसरा) की कमान सालार रज्जब को सौंपी तथा स्वयं केन्द्र (कल्ब) की कमान संभाली तथा भारतीय सेना पर आक्रमण करने का आदेश दिया। इससे पहले इस्लामी सेना ने हिन्दू सेनाओं के सामने हजारों गायों व बैलों को छोड़ा गया ताकि हिन्दू सेना प्रभावी आक्रमण न कर सके लेकिन महाराजा सुहेलदेव की सेना पर इसका कोई भी प्रभाव न पड़ा। वे भूखे सिंहों की भांति इस्लामी सेना पर टूट पड़े। मीर नसरूल्लाह बहराइच के उत्तर में बारह मील की दूरी पर स्थित ग्राम दिकोली के पास मारा गया। सैयद सालार मसूद के भांनजे सालार मिया रज्जब बहराइच के पूर्व में तीन किलोमीटर की दूरी पर स्थित ग्राम शाहपुर जोत यूसुफ के पास मार दिये गए। इनकी मृत्यु कलियुगाब्द ४१३६(८ जून, १०३४ ई.) को हुई।

अब भारतीय सेना ने राजा करण के नेतृत्व में इस्लामी सेना के केन्द्र पर आक्रमण किया जिसका नेतृत्व सालार मसूद स्वंय कर रहा था। उसने सालार मसूद को घेर लिया। इस पर सालार सैफुद्दीन अपनी सेना के साथ उनकी सहायता को आगे बढ़ा। भयंकर युद्ध हुआ जिसमें हजारों लोग मारे गए। स्वयं सालार सैफुद्दीन भी मारा गया। उसकी समाधि बहराइच-नानपारा रेलवे लाइन के उत्तर में बहराइच शहर के पास ही है। शाम हो जाने के कारण युद्ध बन्द हो गया और सेनाएं अपने शिविरों में लौट गईं ।

कलियुगाब्द ४१३६ (१० जून, १०३४) को महाराजा सुहेलदेव के नेतृत्व में हिन्दू सेना ने सालार मसूद गाजी की फौज पर तूफानी गति से आक्रमण किया। इस युद्ध में सालार मसूद अपनी घोड़ी पर सवार होकर बड़ी वीरता के साथ लड़ा लेकिन अधिक देर तक ठहर न सका। राजा सुहेल देव ने शीघ्र ही उसे अपने बाण का निशाना बना लिया और उनके धनुष द्वारा छोड़ा गया एक विष बुझा बाण सालार मसूद के गले में आ लगा जिससें उसका प्राणान्त हो गया। इसके दूसरे ही दिन शिविर की देख भाल करने वाला सालार इब्राहीम भी बचे हुए सैनिको के साथ मारा गया ।

सैयद सालार मसूद गाजी को उसकी डेढ़ लाख इस्लामी सेना के साथ समाप्त करने के बाद महाराजा सुहेल देव ने विजय पर्व मनाया और इस महान विजय के उपलक्ष्य में कई पोखरे भी खुदवाए। वे एक विशाल ***"विजय स्तम्भ"*** का भी निर्माण कराना चाहते थे, लेकिन वे इसे पूरा न कर सके। सम्भवत: यह वही स्थान है जिसे एक टीले के रूप में श्रावस्ती से कुछ दूरी पर इकोना-बलरामपुर राजमार्ग पर देखा जा सकता है ।

उपाचार्य-जवाहर लाल नेहरू स्मा.पो.ग्रे.
का., महराजगंज (उ०प्र०) पिन-२७३३०३

त्रिगर्त का कटोच वंश

● प्रो. एस.के. बंसल

त्रिगर्त का कटोच वंश इतिहास के पन्नों पर प्राचीन काल से अंकित है। इस वंश के उद्भव के सन्दर्भ में विद्वानों के कई पक्ष समक्ष आते हैं। इनमें एक पक्ष यह भी सामने आया है कि इस वंश का उद्भव मंगोल जाति से हुआ है। आर्यों को जाति मानने वाले विद्वान आर्यों और मंगोलों को पृथक्-पृथक् जातियां मानते हैं। इतिहास के प्रमाण अब इस बात की ओर संकेत कर रहे हैं कि मंगोलिया को विष्णु पुत्र मंगल ने बसाया था। मंगल की ही संतान मंगोल हैं। ये तथ्य निश्चय ही आर्य जाति न होकर एक विशिष्ट मानव उपाधि की ओर संकेत कर रही है। मानव का प्रादुर्भाव सर्वप्रथम सुमेरू पर्वत पर हुआ। ब्रह्मा का यहां पर प्रकटीकरण इसका प्रमाण है। यहीं से ब्रह्मा के मानस पुत्रों के क्रम से आगे चलकर मानव जाति अस्तित्व में आई और सम्पूर्ण पृथ्वी पर उसके बसने और विकास के पथ विकसित होते गए। आर्य ही आदि मानव सभ्यता के रूप में आगे बढ़ते गए। पूरी दुनियां में आर्य लोग अपनी सुविधानुसार फैलते गए और अपने कुनबे बसाए। परवर्ती काल में ये कुनबे विभिन्न जातियों, वर्गों और समुदायों के रूप में विकसित हुए। मंगोल वंश से प्रादुभूत कटोच वंश भी उनमें से एक हैं। यहां सभ्यता के कुछ तथ्य उद्धृत किए जा रहे हैं जो कटोच वंश को विष्णु पुत्र मंगल द्वारा स्थापित वंश मंगोल से उद्भूत होने का संकेत हैं। त्रिगर्त वर्तमान हिमाचल के प्राचीन भू—भाग का विशेष गणराज्य था।

उत्तर भारत में हिमाचल प्रदेश अपनी भौगोलिक स्थिति, प्राचीन सांस्कृतिक परम्पराओं, कला, सभ्यता एवं ऐतिहासिक दृष्टि से गौरव-पूर्ण स्थान रखता है। यह प्रदेश देवभूमि तथा तपोभूमि के नाम से जगत प्रसिद्ध है। यहां का जनमानस देव आस्था से अभिभूत है। सत्यं, शिवं एवं सुन्दरम् का साक्षात्कार इस भूमि पर स्वत: ही होता है। यहां हिमाचल की उतुंङ्ग शृंखलायें, शिवालिक की छोटी—छोटी घाटियाँ और इसके मध्य का अत्यन्त उपजाऊ मध्यभाग सदैव अपनी ओर आकर्षित करती हैं। विश्व विख्यात मनाली मनुमहाराज की तप: स्थली इसी प्रदेश में है। जिसकी आध्यात्मिक शक्ति एवं सुन्दरता को देखकर दुनिया के लोग आश्चर्यचकित हो जाते हैं। प्रसिद्ध इतिहासकार रघुनंदन शर्मा ने आर्य जाति की उत्पत्ति इसी हिमालय क्षेत्र में बताई है। बाद में आगे चलकर यहीं आर्यगण विकसित होते होते इस पर्वतीय क्षेत्रों के विभिन्न भागों में फैल गए। जिन में त्रिगर्त, औदुम्बर, कुल्लूत और कुलिन्द प्रमुख थे। ये गण राज्य राजनैतिक, सामाजिक एवं धार्मिक दृष्टि से सुदृढ़ होते गए तथा इन्होंने अपनी कला, विज्ञान एवं शौर्य कौशल से समस्त क्षेत्र को प्रभावित किया।

उपलब्ध साक्ष्यों के आधार पर त्रिगर्त जनपद में एक शक्तिशाली अपना साम्राज्य स्थापित करने वाला कटोच वंश का सम्बन्ध आर्य की उस शाखा से है जो पूर्व काल में

मंगोलिया से चल कर हिमाचल के निचले क्षेत्र में बस गया था। ये क्षत्रिय थे। इन्होंने अपने साम्राज्य का विस्तार किया। यह कटोच वंश अपनी वीरता के लिए प्रसिद्ध रहा है।

त्रिगर्त एक प्रमुख गणराज्य था। इस गणराज्य में राजपूतों का ही बाहुल्य था। हिमालय और विशेषकर त्रिगर्त कांगड़ा में कटोच्च राज परिवार सर्व प्रमुख था जो अपनी गौरवपूर्ण विशेषताओं और मौलिकता से सम्पन्न रहा होगा। इसका प्रदेश व्यास, शतद्र, रावी या शिवालक से लेकर हिमालय तक उच्च पर्वत मालाओं से घिरा था। इस प्रदेश के राजपरिवार को कटोच्च परिवार कहते हैं। इस वंश का प्रवर्तक भूमिचन्द था। कटोच शब्द कट + उच्च शब्द से बना है। कट शब्द का अर्थ छावनी अथवा वह स्थान जहां सैनिक रहते हों और उच्च शब्द श्रेष्ठ का परिचायक है। कटोच अर्थात् उच्च छावनी व सैनिक सजगता से रहने वाला समाज। त्रिगर्त गणराज्य का कटोच वंश आयुद्धग्रीवी था ऐसे प्रमाण मिलते हैं। पाणिनी ने भी इस जाति को आयुद्धजीवी कहा है। इस का अभिप्राय यह हुआ कि त्रिगर्त षष्ठ के अन्तर्गत परिगणित संघ युद्ध में निपुण थे और उनका जीवन युद्धों पर निर्भर रहता था। एक अन्य व्याख्या के आधार पर कटोच शब्द की व्युत्पत्ति के आधार पर 'कट' का अर्थ 'लश्कर' है और ओच 'सरदार' होता है। महाभारत की सेना में दक्ष योद्धाओं का सरदार कटोच कहलाया होगा।

कहा जाता है कि भूमिचन्द मनुष्य नहीं अपितु दैवी-शक्ति से उत्पन्न हुआ था। ब्रह्मा के मानस-पुत्रों, गणेश या मिनर्वा के सामान यह दुर्गा भवानी के श्रम-सीकरों से युवावस्था में ही उत्पन्न हुआ था अथवा यह कहना उपयुक्त होगा कि जैसे शंकर के संकल्प से 'वीरभद्र' की उत्पत्ति हुई थी, उसी प्रकार भवानी के संकल्प ने 'भूमिचन्द्र' को उत्पन्न किया (हिमाचल प्रशस्ति पृ.८)। ज्वालामुखी के प्रसिद्ध मन्दिर का निर्माण कटोचवंश के आदि पुरुष भूमिचन्द्र के द्वारा ही किया गया था। यह राजा महाभारत काल से कई शताब्दी पूर्व हुआ। त्रिगर्त राजाओं के अनेकों प्रसंग महाभारत, पुराण, राजतरंगिणी एवं ह्वेनसांग के यात्रा—वृतों में यथास्थल पाए जाते हैं।

तारीख—ए—राजगाने कदीम आर्यवर्त पुस्तक के लेखक विख्यात इतिहास वेता विद्वान ठाकुर नगीना राम परमार ने अपनी इस पुस्तक के माध्यम से उपरलिखित कटोच वंशी राजा भूमिचन्द्र की उत्पत्ति की पुष्टि करते हुए लिखा है कि इस रूहे जमीन पर सभी जीवित रियासतों में त्रिगर्त (कांगड़ा) रियासत सबसे पुरानी है, जिसका विस्तृत ब्यौरा वंशावली में आज तक उपलब्ध है। जैसे पहले लिखा है कि त्रिगर्त (कांगड़ा) रियासत के राजा कटोच वंशी हुए। इनका आदि पुरुष भौमचन्द्र या भूमिचन्द्र हुआ जिसने आज से ११ हजार वर्ष पहले इस गण राज्य की (रियासत) नींव रखी थी। इसका नाम इतिहासकारों ने त्रिगर्त देश जालधु: और जालन्धर रखा और राजधानी नगरकोट या कोट कांगड़ा को माना है। इस रियासत के प्रर्वतक भूमिचन्द्र के जन्म के बारे में विभिन्न इतिहासकारों ने मात्र क्यास लगाए हैं। वह मानस पुत्र ना होकर दैवीशक्ति से उत्पन्न हुआ।

इस बात की पुष्टि के लिए हमें विष्णुपुरी रियासत को समझना होगा क्योंकि विष्णुपुरी देवताओं की रूहानी व जंगी सल्तनत थी जिसका पहला राजा कश्यप ऋषि का बेटा श्री विष्णु जी को बनाया। इन्होंने सुमेरू पर्वत के दक्षिणी में अपनी विष्णुपुरी राजधानी

बनाई। इस जगह में विष्णु धर्म व युद्ध विद्या की शिक्षा का एक बहुत बड़ा गुरूकुल बना जहां देवताओं व आर्यों को राज्य व लड़ने (शस्त्रशास्त्रेषु च कौशलम्) अर्थात् शस्त्र व शास्त्र की विद्या दी जानी लगी। हिन्दुओं के पौराणिक शास्त्रों से पता चलता है कि देवता व आर्य विष्णुपुरी में जाकर युद्ध विद्या सीखते थे (राजगान–आर्यवर्त पृ. १३५)। यहां पर सभी औज़ार जहरीली गैसों से बनाए जाते थे। पुराणों में इस तरह के दो शास्त्रों का जिक्र आता है। एक विष्णुशास्त्र व दूसरे शिवशास्त्र। बाद में धर्ममत में भी विष्णुमत व शिवमत उद्धृत हुए। जब भी देवता व आर्य कभी दुशमनों से परेशान होते तो विष्णु जी की पनाह में आते। क्योंकि विष्णुजी ने कभी दानवों की सहायता नहीं की इसलिए वह इनके दुश्मन बन गए। इसी तरह विष्णुजी के बाद उनकी अगली पीढ़ी में सतस, कश्यप, वराह, नृसिंह और वामन प्रसिद्ध हुए। एशिया के उत्तरी पश्चिमी जगह जहां आज भी रूद्र कौमे (मंगोल) आबाद हुई। अत: विष्णुजी की अगली पीढ़ी में 'वराह' एक बहुत शक्तिशाली राजा हुआ। जिसने पश्चिमी एशिया के दैत्य राजा हिरण्यकश्यपु को मारकर देवताओं को उसकी कैद से छुड़वाया। इसके बाद विष्णुपुरी में बहुत से राजा हुए जिनके नाम वाराह व 'आदवाराह' भी मशहूर थे।

वराह की रानी का नाम पृथ्वी या भूमि था तथा विष्णुपुरी की अन्य बहुत सी रानियों के नाम पृथ्वी व भूमि हुए। सुमेरू पर्वत के इलावा कोह हिमालय से उत्तरी एशिया तक विष्णुजी का राज्य था। क्योंकि ज्यादातर विष्णु जी क्षीरसागर के उत्तरी ध्रुव में योगाभ्यास में व्यस्त रहते थे। इसलिए विष्णुपुरी राज्य की देख–रेख के लिए अपने लड़के मंगल को वहां का राजा घोषित किया। इसने ही बाद में समस्त एशिया में अपना राज्य कायम किया। बाद में मंगल के नाम से ही यह जगह मंगोलिया जानी जाने लगी। यहां रहने वाले सभी मंगोल कहलाए। इतना ही नहीं मुगल शब्द भी मंगल का ही बिगड़ा हुआ शब्द है। तारीख राजगान–ए–आर्यवर्त में यह भी लिखा है कि मंगल का दूसरा नाम ही भौम है। जिसको कांगड़ा के कटोच राजपूत अपना प्रर्वतक मानते हैं और यही भौम चीन यानी प्रागज्योतिषपुर का राजा भी था। इस लिए कांगड़ा व प्रागज्योतिषपुर यह दोनों रियासतें मंगोल की ही शाखाएं हैं। 'पसकटोच' जिसे यूनानियों ने 'च' ना लिखकर कथयार्या कौम भी लिखा है। तारीख राजगान–ए–आर्यवर्त में लिखा है कि 'भौम' विष्णुपुरी के राजा 'आदवाराह' का बेटा था और उसकी माँ का नाम पृथ्वी था। जिसे पृथ्वीवाई भी बोला गया था। विष्णुजी की औलाद होने से कटोच खानदान को विष्णुखानदान भी कहा गया है तथा 'भौम' 'भूम' की औलाद होने से इसे भौमवशं भी कहा गया। विष्णुजी पुराने समय के सबसे बड़े देवताओं में से एक माने जाते हैं। इसलिए विष्णुखानदान और भौम की औलाद होने से इसे 'देवीवंश' भी कहा जाता है। अत: कटोच वंश 'मंगोल' सिद्ध होता है।

११ हजार वर्ष पहले भौम के बेटे सौमचन्द ने पंजाब के पहाड़ों में देवताओं की सुरक्षा के लिए एक रियासत व दुर्ग की नींव रखी। यह दुर्ग आज का अजयदुर्ग कांगड़ा दुर्ग भी हो सकता है। महाभारत के समय में इस रियासत में सुशर्मन् कटोच (वंशावली में २३४ वां राजा) राज्य करता था जिसने महाभारत में कौरवों की ओर से युद्ध किया

क्योंकि वह राजा धृतराष्ट्र का जमाई व उसकी बेटी 'लछमणा' का पति था। बाद में इसी खानदान के राजाओं के सम्बन्ध यूनानियों के समय राजा सिंहगलचन्द, २५३ राजा मंगलचंद का सम्बन्ध जम्मू रियासत के साथ मिलता है। २७०वें राजा जलहन चन्द का सम्बन्ध लाहौर के राजा केदार के समय से था। कांगड़ा का सम्बन्ध व इसके बारे में जानकारी हमें रियासत कश्मीर, जम्मू व चम्बा के बहुत से दस्तावेजों से पता चलती है। कलियुगाब्द ४१११(१००९ई.) में महमूद गजनवी ने इस रियासत पर आक्रमण किया। उस समय ४३६ वां राजा जगदीशचंद था। कलियुगाब्द ४४६२(१३६०ई.) में फिरोज तुगलक ने कांगड़ा पर चढ़ाई की। कांगड़ा के राजा लछमणचंद के बाद जसवां, सिंवा, दातारपुर और गुलेर रियासतों में बट गया। राजा धर्मचंद के समय अकबर बादशाह ने इस रियासत पर कब्जा किया तथा बादशाह जहांगीर के समय कांगड़ा का राजा घमण्डचंद मुगलों का सामना करता रहा। महाराजा रणजीतसिंह व कांगड़ा के राजा संसारचंद के बीच लम्बा संघर्ष रहा। गोरखों से भी संघर्ष रहा। बाद में अनिरूध चन्द के बेटे रणवीरचन्द ने अंग्रेजों से सम्बन्ध कायम किए लेकिन रणवीर के भाई प्रबोधचन्द ने कलियुगाब्द ४९४८ (१८४६ई.) में अंग्रेजों के खिलाफ बगावत की, बाद में संसारचंद के भाई फतेहचंद को रणजीतसिंह ने उसे एक लाख सालाना कर पर लम्बाग्राम जागीर दी और राजा की उपाधि भी दी। परन्तु फतेहचन्द के पोते प्रतापचंद को राजा की उपाधि देकर अंग्रेजों ने सारी जागीर पर हमला किया। बाद में यह जागीर Court of ward के अधीन रहा। आज इस जागीर पर महाराजा आदित्यदेव सिंह कटोच मंगोल या 'मंगल' भौम के अति प्राचीन वंश को सम्भाले हुए है।

इस प्रकार कटोच वंश का इतिहास प्राचीन है। इस वंश की प्राचीनता के कई प्रमाण प्राचीन ग्रन्थों में इस वंश के मंगोलिया से लेकर वर्तमान काल तक के राजाओं के वंशानुक्रम और घटनाओं के महत्वपूर्ण तथ्यों को उद्घाटित करते हैं। अत: कटोच वंश के उद्भव के संदर्भ निश्चय ही मंगोल वंश की ओर संकेत करते हैं। ये उपर्युक्त तथ्य निश्चय ही विवेचनीय है।

सन्दर्भग्रन्थ

१. वैदिक सम्पति उत्तरार्ध—प. श्री. रघुन्दन शर्मा
२. हिमाचल प्रशस्ति छठा भाग, अलंकार—मार्तण्ड महाराजा संसार चन्द—प. गोपाल शास्त्री
३. युग-युगीन त्रिगर्त, भारतीय इतिहास संकलन योजना समिति हिमाचल प्रदेश —डा. रविप्रकाश आर्य
४. स्मारिका, ठाकुर जगदेव चन्द समृति शोध संस्थान समिति नेरी, हमीरपुर हि.प्र.
५. The katoch Saga, Sh. Jagdev Singh Katoch
६. Vishnu Purana to H.H. Wilson, A system of Hindu mythology and tradition, Calculta.
७. Mahabharata, Ved Vyasa, to Brajdeo Prasad Roy, Political Ideas and institutions of Mahabharata, Calcutta.
८. History of Himachal Pradesh M.S. Alhuwalia Shimla.
९. तारीख—ए—राजगाने कदीम आर्यवर्त, ठा. नगीना राम परमार

इतिहास प्रवक्ता
राजकीय महाविद्यालय ऊना हि.प्र.

भगवती सती

● कृष्णानन्द सागर

शिव-पत्नी सती कैलाश पर्वत पर विचरण कर रही थी। उसने देखा कि आकाश मार्ग से विभिन्न देवी-देवता अपने-अपने वाहनों पर सवार होकर कहीं जा रहे हैं। उनसे पूछने पर पता चला लगा कि प्रजापति दक्ष ने एक विशाल यज्ञ का आयोजन किया है, उसी यज्ञ में सम्मिलित होने के लिए वे सभी जा रहे हैं।

दक्ष प्रजापति सती के पिता थे। एक बार वे ब्रह्माजी की सभा में पधारे तो वहाँ उपस्थित अन्य सभी लोग उनके सम्मान में खड़े हो गए, किन्तु शिवजी अपने स्थान पर ही बैठे रहे। दक्ष ने इसे अपने दामाद की धृष्टता माना और भरी सभा में उन्हें काफी भला-बुरा कहा; साथ ही यह शाप भी दे दिया कि अब से इस महादेव को इन्द्र आदि देवताओं के साथ यज्ञ का भाग नहीं मिलेगा।

यही कारण था कि दक्ष ने अपने यहाँ यज्ञ रचाया तो यज्ञ हेतु सभी देवों को तो निमन्त्रण भेजा, किन्तु अपने ही दामाद शिवजी को नहीं बुलाया। इसीलिए सती को इस यज्ञ की कोई जानकारी नहीं थी। देवों से पता लगने पर वह शिवजी के पास गई और उन्हें भी यज्ञ में चलने को कहा। शिवजी ने कहा – "सती! बिन बुलाए कहीं भी नहीं जाना चाहिए।"

सती बोली – "पर यह यज्ञ तो मेरे पिता के यहाँ है, वहाँ जाने में क्या हर्ज है?"

शिवजी – "पिता का घर भी बिन बुलावे के नहीं जाना चाहिए।"

सती – "पिताजी यज्ञ की व्यस्तता में हमें बुलाना भूल गए होंगे।"

शिवजी – "उन्होंने सबको निमन्त्रण भेजे और वे अपनी ही बेटी—दामाद को भूल जाएँ, यह सम्भव नहीं।"

सती – "फिर भी पिता तो पिता हैं। उनके यहाँ तो कभी भी जाया जा सकता है। देखिए, सब लोग जा रहे हैं। हम लोग नहीं गए तो उन्हें बुरा लगेगा। फिर इसी बहाने माँ तथा अन्य लोगों से भी मिलना हो जाएगा। चलिए न, मेरा तो बहुत मन कर रहा है।"

शिवजी के बहुत समझाने पर भी जब सती नहीं मानी, तो वे बोले – "ठीक है, तुम्हारा बहुत मन है तो तुम चली जाओ। मैं तुम्हारे जाने की व्यवस्था कर देता हूँ।"

सती का चेहरा खिल उठा। उसे यज्ञ में जाने की अनुमति जो मिल गई। शिवजी ने अपने कुछ गण सती के साथ कर दिए। सती दक्ष प्रजापति के यहाँ पहुँच गई। वह सोच रही थी कि उसे देखकर परिवार के लोग प्रसन्न होंगे, खूब उसका आदर-सत्कार करेंगे, वह कुछ दिन यहाँ रहकर फिर लौटेगी। किन्तु यहाँ का नजारा तो कुछ और ही था। माँ तो

मिली, पर घर के अन्य लोग दक्ष के भय के कारण उससे कुछ बचते ही रहे। दक्ष ने भी उससे कुशल-क्षेम तक नहीं पूछी। किसी ने यह तक जानना नहीं चाहा कि शिवजी क्यों नहीं आए। सती को यह सब कुछ बहुत ही विचित्र लगा। उसे शिवजी के कहे वचन याद आने लगे। उन्होंने ठीक ही कहा था कि बिन बुलाए कहीं भी सम्मान नहीं होता। उनकी बात न मानकर मैंने अच्छा नहीं किया। वह बहुत दुखी हुई।

यज्ञ चल रहा था। एक-एक देवता के नाम पर आहुति डाली जा रही थी। सभी देवताओं के यज्ञ-भाग अलग-अलग निकाल रखे गए थे, किन्तु उनमें शिवजी का कोई यज्ञ-भाग नहीं था। यह तो सरासर शिवजी का अपमान था। अपना अपमान तो जैसे-तैसे वह सहन कर गई थी, किन्तु शिवजी का अपमान कैसे सहती। उसका दुख अब क्रोध में बदल गया। भरी सभा में उसने पिता से पूछ लिया— "पिताश्री! यहाँ सभी देवताओं का यज्ञ भाग रखा गया है, किन्तु मेरे पति जो कि देवाधिदेव हैं और सब देवता जिनकी वन्दना करते हैं, उनका यज्ञ-भाग यहाँ नहीं है। ऐसा क्यों ?"

दक्ष को सती द्वारा इस प्रकार पूछना बहुत बुरा लगा। वह शिव के बारे में उल्टी-सीधी बातें कहने लगा — "शिव बहुत घमण्डी हो गया है। उसे छोटे—बड़े के साथ कैसा व्यवहार करना चाहिए, यह भी ध्यान नहीं रहता। जो बड़ों का सम्मान न करे, वह देवाधिदेव कैसा ? वह देवाधिदेव होना तो दूर, देव होने का भी अधिकार खो चुका है। इसलिए उसके यज्ञ-भाग का क्या मतलब ? मैं प्रजापति हूँ। स्वयं ब्रह्माजी ने मुझे यह दायित्व सौंपा है। इसलिए यह मैं तय करूंगा कि किसका यज्ञ-भाग होना चाहिए और किसका नहीं। इस विषय में तुम्हारा कुछ भी कहना अनुचित है।"

शिव के बारे में इस प्रकार की कटु बातें सुन सती की आँखों से तो मानो अंगार बरसने लगे। वह सभी देवताओं व ऋषियों को सम्बोधित कर कहने लगी — "हे देवगणो! हे ऋषियो! आप सबने सुना कि यहाँ मेरे पति के विषय में क्या कहा गया है। आप सबको ज्ञात होना चाहिए कि जिस यज्ञ में देवाधिदेव शिवजी का अपमान हो, वह यज्ञ पूर्ण नहीं हो सकता। अब यह यज्ञ भी पूर्ण नहीं होगा। शिव-आहुति के रूप में मैं अपने शरीर को ही इस यज्ञ को समर्पित करती हूँ।" यह कह सती दोनों हाथ जोड़कर और शिवजी को स्मरण कर यज्ञ कुण्ड में कूद गई। उसका शरीर सारा जलने लगा। यह देख चारों ओर कोहराम मच गया। सब कहने लगे यह तो बहुत ही अनिष्ट हुआ।

सती के साथ आए गणों ने यह सूचना शिवजी को जाकर दी। शिवजी ने जब सुना कि सती ने यज्ञाग्नि में प्रवेश कर प्राण त्याग दिए हैं तो उन्होंने क्रोध में आकर अपने ही अंश वीरभद्र को आज्ञा दी कि तुरन्त जाकर दक्ष को दण्डित करो और उसके यज्ञ का विध्वंस कर दो। वीरभद्र ने वहाँ पहुँच कर यज्ञ का विध्वंस करना शुरू कर दिया। उन्होंने यज्ञ हेतु रखी गई सम्पूर्ण सामग्री को तहस-नहस कर दिया। उन्हें रोकने के लिए दक्ष के जो सैनिक बढ़े, उन्हें भी यमलोक भेज दिया तथा दक्ष प्रजापति का भी वध कर डाला।

तदुपरान्त शिवजी वहाँ पहुँचे। वे सती के जलते हुए शरीर को अपने कन्धे पर रख कभी इधर कभी उधर उन्मत्त हो घूमने लगे। उस अवस्था में उन्होंने सम्पूर्ण भारतवर्ष के कई चक्कर लगाए।

शिव के उन्मत्त रहने पर सम्पूर्ण सृष्टि उन्मत्त हो जाएगी और जब तक सती का शरीर उनके कन्धे पर रहेगा, वे उन्मत्त ही रहेंगे। उनकी उन्मत्तता को तोड़ना बहुत आवश्यक है।

इसका उपाय श्री विष्णु ने किया। उन्होंने सुदर्शन चक्र से सती के शरीर के भिन्न-भिन्न अंगों को काटना आरम्भ किया। एक-एक करके अंग जमीन पर गिरते गए। शिव तो उन्मत्त थे, इसलिए उन्हें पता भी नहीं चला। जब सम्पूर्ण अंग कट-कट कर जमीन पर गिर गए और कन्धा सती-शरीर रहित हो गया, तब जाकर उनकी उन्मत्तता टूटी। वे पुन: शिवरूप में स्थित हुए।

क्योंकि सती के शरीर को उठाए शिव सम्पूर्ण भारतवर्ष में घूम रहे थे, इसलिए सती के अंग कट-कट कर भारत के भिन्न-भिन्न स्थानों पर गिरे। इन स्थानों की संख्या ५२ (बावन) है। सती स्वयं शक्ति स्वरूपा थीं। अत: जहाँ-जहाँ उनके अंग गिरे, वहाँ-वहाँ आध्यात्मिक शक्ति (ऊर्जा) का उत्सर्जन होने लगा। बाद में ये सभी स्थान शक्तिपीठ कहलाने लगे। वैष्णो देवी (जम्मू), वज्रेश्वरी (कांगड़ा), ज्वालाजी (ज्वालामुखी), कामाख्या देवी (असम), हिंगुलाज देवी (पाकिस्तान) आदि उन्हीं बावन शक्तिपीठों में से ही हैं।

एम-१०९, सेक्टर-२७,
नोएडा - २०१३०१

करतार सिंह, सरकारी ठेकेदार
गाँव अम्ब, डाकघर ज्वालामुखी,
जिला कांगड़ा (हि०प्र०)
मो.: 094180-45276

जगत विभूति

शिल्प शास्त्र के आदि आचार्य विश्वकर्मा

• रामशरण युयुत्सु

विश्व की प्राचीन शिल्प कला के क्षेत्र में भारत का अत्यन्त गौरवपूर्ण स्थान है, जिस पर हम गर्व कर सकते हैं। यह कहने में भी कोई अतिशयोक्ति नहीं है कि सम्पूर्ण भारत असंख्य मंदिरों, भवनों, दुर्गों, स्मारकों का एक विशाल संग्रहालय है। प्राचीन काल से ललित कलाओं की तरह वास्तुकला (शिल्प कला) को महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त है।

विश्वकर्मा को शिल्पकला का प्रथम प्रवर्तक एवं आचार्य माना जाता है। विश्वकर्मा देवताओं के वास्तु एवं शिल्पकार थे; जो बाद में भूवासियों के लिए प्रथम वास्तु प्रवर्तक बनें। दक्षिण भारत में लोक प्रचलित 'समरांगण सूत्रधार' ग्रन्थ में एक कथा आती है, जिसमें कहा गया है कि – 'वास्तुविद् को सामुद्रिक गणित, ज्योतिष और छन्द का ज्ञान अवश्य होना चाहिए।'[१]

अति प्राचीन वैदिक काल में लोहा, कांसा और पाषाण आदि पदार्थों की एक साथ उन्नति कर विज्ञान के उच्चतम शिखर पर पहुंच चुका था। जिस काल को यूरोपियन पाषाण काल या कांसा युग का बताते हैं, उन युगों से कई लाख वर्ष पूर्व तो भारत भूमि में विमान उड़ चुके थे। हमने भिन्न-भिन्न प्रकार की मणियों का अविष्कार कर भूमण्डल को चकित कर दिया था।

आज भी कुछ लोग उसी प्राचीन वैदिक काल के विज्ञान की झलक वापिस लाने का प्रयत्न कर रहे हैं, जिससे कि भारतवासियों का यह भ्रम दूर हो जाए कि यूरोपवासियों की धारणानुसार मनुष्य ने पाषाण, कांसा अथवा लोह युग के आगे की उन्नति नहीं की; अपितु यह सब पदार्थ हमारे महान पुरुषों द्वारा यहीं एक साथ अन्वेषण कर बड़े-बड़े यन्त्रों का अविष्कार कर लिया गया था। आज विश्वकर्मारचित 'अर्थवेद' अर्थात् 'शिल्प-शास्त्र' भारतवासियों के हाथ में होता तो इस प्रकार यूरोपियन साहित्य की छाप हमारे साहित्य, शिक्षा, तकनीक पर नहीं पड़ती और न ही हमको किसी भ्रम में पड़ने का अवसर ही प्राप्त होता। किन्तु अपने अर्थवेद (शिल्पशास्त्र) को भूल जाने के कारण आज हमारी यह दशा हुई कि हमें इस विषय में विदेशी साहित्य का आश्रित होना पड़ा।

शिल्पाचार्य विश्वकर्मा तथा उनके द्वारा रचित साहित्य संबंधी जीवन पर प्रकाश डालने का यथोचित प्रयास नहीं किया गया है। इसी कारण से यह विषय दिन पर दिन

अंधेरे गर्त में डूबता चला गया और इसी के कारण ही हमारा ऐतिहासिक एवं वैज्ञानिक दृष्टिकोण विदेशी विचारधारा के मकड़जाल में जाकर फंस गया।

विश्वकर्मा जी द्वारा निर्मित उन वस्तुओं का वर्णन करना तथा विश्वकर्मा तथा उनके पुत्रों द्वारा रचित साहित्य को प्रकाश में लाना, आज बड़ा दुष्कर कार्य हो रहा है; अत: जो कुछ भी इस समय हमें प्राचीन ग्रन्थों से सामग्री मिलती है, उसी के आधार पर कुछ वस्तुओं और साहित्य का उल्लेख करके ही उस पर संतोष करना पड़ता है।

सृष्टि में जैसे बिना वायु के कोई जीव जीवित नहीं रह सकता, इसी प्रकार मनुष्य समाज ही नहीं अपितु पशु आदि भी शिल्प की सुखमय रचनाओं के बिना सुन्दर जीवन व्यतीत नहीं कर सकते।

ईश्वर निर्मित पदार्थों के गुणों की खोज करना ही विज्ञान है और फिर जिस प्रयोजन के लिए जो पदार्थ उपयुक्त हो सकता है उस पदार्थ को उस प्रयोजन के लिए उपयुक्त बना देना ही शिल्प है। यही विश्वकर्मा का विज्ञान और शिल्प विद्या है। जिससे मनुष्य संसार में धनवान, विद्वान और आलस्यरहित होकर ऐश्वर्यशाली कहला सकता है।

विश्वकर्मा हविषा वावृधान : ....

यजु १७.२२

शब्द सागर में शिल्प शास्त्र का अर्थ 'वह शास्त्र जिस में शिल्पकला का विवेचन होता है।'[२]

महर्षि दयानन्द की मान्यता है– अथर्ववेद का उपवेद अर्थववेद जिसे शिल्प शास्त्र कहते हैं, यह विश्वकर्मा कृत है। जिसके द्वारा विज्ञान, कला कौशल और पृथ्वी से लेकर आकाश पर्यन्त तक की विद्या को सीख विविध भांति के विज्ञान युक्त पदार्थों का निर्माण करें।[३]

शिल्प विद्या इतनी अलौकिक एवं चमत्कारिक थी कि अन्य देवतागण विश्वकर्मा का असीम सत्कार किया करते थे और विश्वकर्मा भी उनकी सन्तुष्टि के लिए नाना प्रकार की ऐश्वर्ययुक्त वस्तुएं निर्माण कर विविध धार्मिक अनुष्ठानों की पूर्ति करते थे। ब्रह्मवैवर्त पुराण कृष्ण जन्म खण्ड राधाकृष्ण संवाद अध्याय ४७ में उल्लेखित है, विश्वकर्मा द्वारा निर्मित अमरावती नगरी को देखकर इन्द्र अत्यन्त सन्तुष्ट हुए।

पद्म पुराण की भूखण्ड कथा में शिव तथा कृष्ण द्वारा शिल्प प्रवर्तक विज्ञानाचार्य विश्वकर्मा का उनके पांचों पुत्रों सहित अत्यन्त प्रेमभाव से पूजन का उल्लेख है–

पंचभिः सहितः पुत्रैर्विश्वकर्मा गिरीन्द्रजे।
द्वारकावासिभिर्नित्यं श्रीकामैः पूज्यते सदा।।

अर्थात् शिव और कृष्ण ने विश्वकर्मा का पांचों पुत्रों सहित अत्यन्त प्रेमभाव से

पूजन किया। वेदोक्त विद्याओं की संशय निवृत्ति के लिए ही शिल्पाचार्य विश्वकर्मा ने ही विज्ञान का प्रकाश किया है।

वेद में दो विद्याओं का वर्णन है—एक परा दूसरी अपरा। परा विद्या उपासना तप, इन्द्रिय दमन या योग आदि को कहते हैं और अपरा विद्या तृण से लेकर प्रकृति पर्यन्त गुणों के ज्ञान से ठीक कार्य सिद्धि कर लेने को कहते हैं।[४]

वेदों में व्यक्त समस्त विद्याओं की पूर्ति बिना दोनों विद्याओं के संयोग से कैसे होती? वेद में जहां धनुर्विद्या और विमान अदि का वर्णन है; यह सब अपरा विद्या है। इन विद्याओं का परिचय अथर्ववेद, अर्थवेद, विश्वकर्मा प्रकाश आदि में समाहित है। विश्वकर्मा जी के प्रकाशित चित्र में उनके हाथ में दिखाया जाने वाला 'शिल्प-शास्त्र' शायद इन्हीं ग्रन्थों के समूह का प्रतीक है। ब्रह्माजी ने सृष्टि रचना का विचार कर संसार बसाने की योजना का प्रारूप बनाने के लिए विश्वकर्मा जी से प्रार्थना की और संसार के निर्माण का कार्य उन्हें ही सौंप दिया। विश्वकर्मा जी ने वास्तुशास्त्र के सिद्धान्त बनाए। देव वास्तु प्रवर्तक विश्वकर्मा रचित 'विश्वकर्मा प्रकाश' का संस्कृत भाषा में होने से उसे प्रत्येक व्यक्ति समझ नहीं पाता था। अपनी आजीविका तथा प्रसिद्धि को बढ़ाने के लिए उसमें आधुनिक वास्तुशास्त्रियों एवं ज्योतिषियों ने भी अपने सिद्धान्त जोड़कर उसे लोकप्रिय बनाने का प्रयास किया; जिससे लाभ तो कम हुआ, बल्कि जनता अधिक भ्रमित हुई और पौराणिक बातें लुप्त होती गई। शिल्पशास्त्र और उसके उपयोग का विषय भी पिछड़ गया। समय की गति में फंसकर धीमे-धीमे यूरोपीय पद्धति इस का स्थान लेने लगी। सौभाग्य का विषय है कि अब कुछ विद्वानों ने विश्वकर्मा जी कृत 'विश्वकर्मा प्रकाश' ओर 'शिल्प-शास्त्र' के उपांगों को देव नागरी भाषा में रूपांतरित करने का प्रयास किया है। 'विश्वकर्मा प्रकाश' नामक ग्रन्थ जो शिल्प का उपांग है, में तेरह अध्यायों में वास्तु संबंधी अनमोल ज्ञान वर्णित हैं।[५]

निश्चय रूप में यह मानना होगा कि विज्ञान को फैलाने और मानव समाज को ऐश्वर्यशाली बनाने वाली प्रथम वस्तु लोहा थी। विश्वकर्मा ने अपने इस प्रथम आविष्कृत द्रव्य को अनेक भांति से प्रयोग में लाने अर्थात् नाना प्रकार के यंत्र, विभिन्न प्रकार के भिन्न-भिन्न कार्यों को संपन्न करने वाले उपकरण तथा भांति-भांति के अस्त्र-शस्त्र आदि अनेक वस्तु निर्माण हेतु और लोगों को इस विषय की शिक्षा देने के लिए एक लोह विभाग की स्थापना कर दी जैसे आज प्रत्येक विभाग के उच्च पदाधिकारी अर्थात् विभागाध्यक्ष, प्रबंधक, प्राचार्य, मुख्य अभियन्ता आदि नाम पद रख देते हैं, उसी प्रकार विश्वकर्मा ने अपने इस प्रथम शिल्पीय विभाग के अधिष्ठाता का नाम 'मनु' रखा। इस सर्व प्रिय एवं श्रेष्ठ शिष्य का पूर्व का नाम सानग था।

काष्ठ ही एक ऐसी वस्तु है, जो लोहे के उपकरणों द्वारा और उसके संयोग से

उनके कार्यों को साधन संपन्न करने के लिए काम में ली जा सकती थी। लोहे के पश्चात लकड़ी ही एक ऐसी वस्तु है, जिसके द्वारा आगे शिल्प का विकास किया जा सकता है।

जिस प्रकार लोह संबंधी कार्यों को संपन्न करने के लिए जैसे विश्वकर्मा ने लोह विभाग की स्थापना की, ठीक उसी प्रकार काष्ठ संबंधी शिल्प को उन्नतशीली और विस्तारयुक्त बनाने के लिए काष्ठवस्तु निर्माण विभाग भी स्थापित कर दिया। जिसके द्वारा काष्ठ संबंधी उत्कृष्ट शिल्प जैसे खुदाई का काम, काष्ठ की मूर्तियां, यातायात के लिए गाड़ियां, सुन्दर रथ, नदी में नौकाएं, रहने के लिए मकान, कृषि–यन्त्र (हल, फावड़ा) की रचना आदि–आदि अनेक कार्य संपन्न होने लगे। इस विभाग के अधिष्ठाता पद पर सनातन नामक शिष्य को नियुक्त कर दिया और उस का नाम 'मय' रखा गया।

स्कन्द पुराण में वर्णित देवताओं द्वारा की गई प्रार्थना के फलस्वरूप तांबा, पीतल व कांसा आदि वस्तुएं अधिक से अधिक किस स्थान पर कैसे उपयोगी सिद्ध हो सकती हैं तथा किस यंत्र में उनका कहां और प्रयोग कर उसे साधन संपन्न बनाया जा सकता है, अथवा इन धातुओं के संयोग से और क्या–क्या वैज्ञानिक वस्तुओं का आविष्कार हो सकता है, इन सब व्यवस्थाओं और इन विषय के विज्ञान को उन्नतशीली बनाने के लिए विश्वकर्मा ने इन धातुओं से संबंधित वस्तुओं की रचना हितार्थ एक और पृथक् विभाग खोल दिया। इस विभाग के अधिष्ठाता पद पर अहभून नामक अपने शिष्य को नियुक्त किया; जिनका नाम 'त्वष्टा' रखा। चौथा विभाग प्रस्तर कार्य का था। लकड़ी के घर अधिक उपयोगी नहीं थे, कूएं कच्चे हो नहीं सकते, पशुओं को तालाब या बावड़ियों के बिना यत्र–तत्र जल उपलब्ध नहीं हो सकता था, अन्न पीसने के यंत्र बिना उसको किस प्रकार पीसा जावे, राजाओं की रक्षा आदि के लिए कच्चे दुर्ग कैसे स्थिर रह सके? यह सब ऐसे प्रश्न थे कि बिना पत्थर के संयोग से विस्तार नहीं किया गया तो शिल्प विद्या ही अधूरी रहती है। अतएव विश्वकर्मा ने इस शिल्प को विस्तृत करने के लिए अपने अनेक शिष्यों को शिक्षा दे उन्हें इस कार्य में कुशल बनाया।

वेदादि ग्रन्थों में स्त्रियों की वेशभूषा में अलंकारों को धारण करने का संकेत मिलता है। यजुर्वेद अध्याय १४ मंत्र ३ के भाष्य में ऋषि दयानन्द ने लिखा है :— 'स्त्री नित्य ही वस्त्र और आभूषणों से अपने शरीर को संयुक्त करके व्यवहार करें।'

मनुस्मृति के अध्याय ३ श्लोक ५९ में लिखा है भूषण, वस्त्र और भोजन से सादर देवियों को संतुष्ट करना चाहिए। निघंटु रत्नाकर ने इस विषय में कहा है कि अलंकार धारण करने से सौभाग्य और आयु की वृद्धि होती है, धर्म बढ़ता है, देव प्रसन्न होते हैं, ये पवित्रता, ऐश्वर्य और आनन्द देने वाले हैं।

यह निश्चय है कि प्राचीन काल में आभूषण केवल अंगों की शोभा के लिए ही नहीं अपितु समय और ऋतु को विचार कर तदानुसार यथोचित मात्रा में धातुओं को

सम्मिश्रण कर वैज्ञानिक विधि से तैयार किए जाते थे, जो शरीर के अनेक कष्टों को दूर करने और ऋतुओं के कुप्रभावों आदि से रक्षा करने वाले होते थे। इसीलिए अलंकारों को शिल्प शास्त्रों से अधिक ज्योतिष शास्त्रों में महत्व दिया हुआ है और यही कारण है कि प्राचीन समय में केवल स्त्रियां ही नहीं प्रत्युत देवता कहलाने वाले बड़े-बड़े विद्वान मुकुट, कुण्डल, कड़े और मुद्रिका धारण करते थे। आचार मयूख में मुद्रिका बनाने, मार्कण्डेय पुराण (देवी माहात्म्य) में श्री विश्वकर्मा द्वारा देवी को अलंकार प्रदान करने तथा वाल्मीकि रामायण में सीता जी द्वारा केयूर (बाजूबन्द), कुण्डल तथा नूपुर (पायजेब) पहनने का उल्लेख आया है।

अत: सौन्दर्य तथा विज्ञान युक्त अलंकारों के निर्माण, रथ, विमान आदि में यथोचित स्थान पर विविध प्रकार से स्वर्ण प्रयोग और यज्ञ के लिए कांतिमय पात्रादि बनाने के हेतु यह आवश्यकता थी कि अधिक से अधिक इस स्वर्ण संबंधी शिल्प को उन्नतिशील बनाया जाए। अत: विश्वकर्मा जी ने इस विषय में शिल्प का भी एक विभाग स्थापित कर दिया। इस विभाग के अधिष्ठाता पद पर सुपर्ण नामक शिष्य को नियुक्त किया और इनका नाम 'देवज्ञ' रखा।

इन पांचों आचार्यों ने सृष्टि में अपने-अपने विभाग द्वारा शिल्प कार्यों को बड़े विस्तार तथा निपुणता के साथ संपन्न किया और अनेक शिल्प शास्त्रों की रचना की। इनके बनाए हुए शिल्प शास्त्र आज भी उच्चकोटि की श्रेणी में गिने जाते हैं। ऋषि दयानन्द ने विश्वकर्मा तथा उनके इन्हीं शिष्यों अर्थात् मनु, मय, त्वष्टा, शिल्पी और देवज्ञ द्वारा रचित शिल्प शास्त्रों को ही उच्च कोटि के प्रामाणिक ग्रन्थ माना है।[६]

इसके अतिरिक्त अन्य ग्रन्थों में भी इनके कार्यों का बड़ी प्रशंसा के साथ वर्णन किया है। शिवागम अध्याय ७, स्कन्द पुराण नागर खण्ड अध्याय ६ तथा १२ इसके सटीक प्रमाण हैं।

मनुर्मयश्चत्वष्टाच शिल्पी विश्वज्ञ एवं च।
पंचैते देवऋषियों विश्वकार्मा मुखोदभव।।

स्कन्द पुराण, नागर खण्ड, अध्याय १३

मनु, मय, त्वष्टा, शिल्पी और विश्वज्ञ (दैवज्ञ) यह पांचों ऋषि विश्वकर्मा के मुख से उत्पन्न हुए। यहां यह भी बात जानने योग्य है कि शिक्षा देने वाला गुरु और शिक्षा ग्रहण करने वाला शिष्य यह परस्पर गुरु शिष्य ही नहीं कहे जाते अपितु पिता पुत्र भी कहलाते हैं—

अज्ञो भवति वै बाल: पिता भवति मन्त्रद:।।

मनु. अ.२ श्लोक ५३

जो ज्ञान रहित होता है वह बालक और जो ज्ञान देने वाला होता है वह पिता कहलाता है। विश्वकर्मा इन पांचों को शिल्प विद्या का ज्ञान देने वाले तो थे ही; अत: वह

इनके पिता और यह ज्ञान (शिल्प-विद्या) प्राप्त करने वाले उनके पुत्र के नाम से प्रसिद्ध हो गए।[७]

भुवन पुत्र विश्वकर्मा को ही सृष्टि में प्रथम राज्य प्रणाली स्थापित करने और यथाविधि राजा बनाने तथा अश्वमेध यज्ञ की परिपाटी चलाने का श्रेय प्राप्त है।[८] ब्रह्मा जी द्वारा प्रार्थना करने पर विश्वकर्मा ने अपनी विस्तृत योजना के द्वारा सारे भूमण्डल में शिल्प विद्या को विस्तार युक्त कर दिया और अनेक प्रकार के आश्चर्यजनक अस्त्र, शस्त्र, रथ, यंत्र और विमान आदि बनाकर अपनी विद्या का विस्तार कर दिखाया। तोप और बन्दूक बनाने की विस्तारपूर्वक विधि शुक्र नीति अध्याय—४ में वर्णित है।

विष्णु रहस्य के अनुसार विश्वकर्मा ने स्वयं काष्ठादि का छेदन कर लोकों के स्थान बनाये। विश्वकर्मा ने बड़े-बड़े महल, विमान, बावड़ी और उद्यान बनाए; वस्त्र तथा अनेक प्रकार के बाजे और प्राचीन वस्तुओं की न्यारी-न्यारी रचना की। विवरण उपलब्ध नहीं होने के कारण विश्वकर्मा द्वारा निर्मित उन प्राचीन वस्तुओं का वर्णन करना आज बड़ा दुष्कर कार्य हो रहा है। फिर भी इसको संकलित करना तथा सम्पादित करने का प्रयास आगे की पंक्तियों में किया जायेगा।

सर्वसाधारण की दृष्टि में केवल रथ उसी का नाम है जो गांवों में बैलों से जोड़ कर चलाया जाता है। किन्तु यह उनकी भूल है, वास्तव में रथ, यान, सवारी पर्यायवाची शब्द हैं। अतः जलयान, वायुयान, मोटरयान और वाष्पयान आदि सभी रथ हैं। पुरातन रथ निर्माण कला के अनुसार जहां 'सामरिक रथ' का उल्लेख हो वहां 'टैंक' सम रथों का ध्यान रखना चाहिए। तभी हम अपनी रथ—निर्माण विद्या की खोज कर सकेंगे, अन्यथा नहीं।

रथ बनाने वाले रथकार ब्रह्मणत्व को प्राप्त करने वाले बड़े बुद्धिमान मनुष्य माने जाते थे। वेदों तक में रथकारों के लिए सत्कार करने का आदेश है। ऋग्वेद में लिखा है उत्तम रथ बनाने वाला शिल्पी सत्कार करने के योग्य है। सिद्धान्त कौमुदी में उपलब्ध व्याख्या के अनुसार रथकारों की बड़ी उच्चतम श्रेणी पर गणना की है।[९]

विश्वकर्मा ने विश्व हेतु स्वयं एक सम्पूर्ण कलाओं से युक्त रथ का निर्माण किया। यह सोने का रथ लोक प्रसिद्ध था, जिसका वाम अंग सूर्य चन्द्र के तुल्य था।[१०] रथ पर स्थापित किये गये दो वैज्ञानिक यंत्र दोनों अंगों पर शोभायमान थे, जिससे रात्रि के समय अथवा प्रत्येक ऋतु में सुविधापूर्वक यात्रा हो सके।

विश्वकर्मा द्वारा बनाये गये कुछ प्राचीन शस्त्रों का उल्लेख स्कंद पुराण में नागर खण्ड में मिलता है; जैसे विश्वकर्मा ने ब्रह्मदेव के लिए कंडिका शस्त्र, विष्णु के लिये चक्र, शंकर के लिए त्रिशूल, इन्द्र के लिए वज्र, अग्नि के लिए परशु व धर्मराज के लिए दण्ड इत्यादि शस्त्र निर्माण किए।

किसी शस्त्र के लिए यह समझ लेना भूल है कि वह किन्हीं मंत्र शक्तियों द्वारा प्रहार करता था। अपितु वे सब वैज्ञानिक विधि अनुसार चमत्कार युक्त ही होते थे। 'चक्र' नामक शस्त्र की आकृति वृताकार (गोल) थी और वैज्ञानिक कलाओं की प्रेरणा से अत्यन्त वेग के साथ चक्कर काटता हुआ संहार करता था। 'त्रिशूल' का आकार प्रत्यक्ष है। 'वज्र' नामक शस्त्र अन्यान्य शस्त्रों की अपेक्षा अधिक विख्यात है। यह एटम बम के समान अत्याधिक शक्ति सम्पन्न शस्त्र था, इसका आकार बरछे के फल के समान था। 'वज्र' शब्द के कोष में फौलाद, कड़ा, मजबूत, हीरा, विद्युत और भीषण आदि अर्थ मिलते हैं। यह फौलाद का बना हुआ, बहुत कड़ा और मजबूत हीरे के समान दमकने वाला, विद्युत धाराप्रवाह से भीषण प्रहार करने वाला शस्त्र था।

प्राचीन दूरवीक्षण (दूरबीन) यंत्रों द्वारा नक्षत्रों का ज्ञान प्राप्त किया जाता था। चन्द्र ग्रहण को देखने के लिए 'तुरीय यंत्र' तो हमारा प्रसिद्ध ही है।

विश्वकर्मा द्वारा दूरवीक्षण यंत्र बनाने का वर्णन शिल्प संहिता में मिलता है। इस यंत्र के बनाने की विधि भी इस ग्रंथ में लिखी है। इस प्रकार के यंत्रों का वर्णन 'शिल्प संहिता' के अतिरिक्त 'सूर्य सिद्धान्त' ग्रन्थ में भी मिलता है। यह दोनों ग्रन्थ प्राचीन हैं तथा इस में वर्णित यंत्र विश्वकर्मा कालीन थे।

हमारी प्राचीन ज्योतिष गणनानुसार ६० विपल का एक पल, ६० पल की एक घड़ी ओर ६० घड़ी का एक दिन-रात होता है। इस गणना को देखते हुए कहा जा सकता है कि विदेशियों ने हमारी विद्या का अनुसरण कर इसी के अनुरूप वर्तमान घड़ियों का निर्माण किया है। वर्तमान घड़ियां विदेशियों का अविष्कार नहीं है? यह सब हमारी प्राचीन विद्या है, प्रमाण स्वरूप आज भी 'धूप घड़ियां' विद्यमान हैं। कुछ प्राचीन घटि-यंत्रों (घंटों) में जल-यंत्र एवं मोर, वानर या नर आकृति के यंत्रों का उल्लेख 'सूर्य सिद्धान्त' में हैं। इनमें वानर और मोर आकृति वाले यंत्रों का स्पष्टीकरण श्री रंगनाथ टीकाकार ने किया है। बालू और जल दोनों यंत्रों का वर्णन 'शिल्प संहिता' व 'सूर्य सिद्धान्त' में है।

पारा, सूत, तेल ओर जल के संयोग से भार मापक यंत्र (बैरोमीटर), उष्णता मापक यंत्र (थर्मामीटर) तथा एक 'स्वयंवह' नामक यंत्र का भी सूर्य सिद्धांत में वर्णन है। पारा भरकर बनाया गया यह गोल यंत्र थोड़ी सी भी हवा चलने से गर्मी पाकर आप ही आप चल पड़ता था। तूफान या मानसून जानने के लिए आज तक जितने यंत्र बने हैं, वे इसकी खूबी तक अभी नहीं पहुंच सके हैं।

संवाद प्रेषक यंत्र (टेलिफोन) के संबंध में एक आश्चर्यजनक रहस्योद्घाटन हुआ है। दक्षिण हैदराबाद मे निकटवर्ती ग्राम के निवासी डाक्टर सैय्यद मोहम्मद कासिम जिनके पूर्वज बीजापुर राज्य के पुरोहित थे, के यहां स्थित संस्कृत ग्रन्थों के विशाल भण्डार वाले पुस्तकालय में एक संस्कृत की पुस्तक रखी है; जिसमें अन्य अनेक विद्याओं के साथ दूर देश में खबर भेजने वाले यंत्र का वर्णन दिया हुआ है। शुक्र नीति में भी इस

प्रकार उल्लेख है कि प्राचीन समय में टेलिफोन का आविष्कार हो चुका था और वह भी बेतार (वायरलैस) अर्थात् तार रहित।[11] वेदों में विमान संबंधी विद्या को व्यक्त किया गया है —

कृष्णं नियानं हरयः सुपर्णा अपो वसाना दिवमुल्पतन्ति।

ऋग्वेद— २.३.२३.१

पार्थिव पदार्थों से बने हुए यान को, तेज गति से चलने वाले अग्नि आदि अश्व, जल सेचन युक्त वाष्प को प्राप्त होकर यांत्रिक गति द्वारा आकाश में उड़ा ले चलते हैं। विष्णु का वाहन गरुड़ वास्तव में कोई पक्षी नहीं, वरन विमान ही था। जिस का नाम 'गरुड़' था। संस्कृत में'वी' पक्षी को कहते हैं और 'मान' का अर्थ अनुरूप होता है। बौद्धकाल तक इस यंत्र का नाम गरुड़ यंत्र पाया जाता है। धम्मपद के बोधि राजकुमार वत्थु पृष्ठ ४१० में गरुड़ यंत्र को लेकर एक शिल्पी की कथा का भी उल्लेख है।

महर्षि भरद्वाज कृत 'अंशुबोधनी' (जो एक प्राचीन ग्रन्थ है, जिसमें अनेक विद्याओं का वर्णन है। इसके विमान अधिकरण में विमान संबंधी विद्या का उल्लेख किया गया है) के विमान अधिकरण में आये हुए 'शुक्त्युद्गमो द्यष्टौ सूत्र पर बोद्धायन ऋषि की वृति में कहा गया है कि — 'शक्त्युद्गम' बिजली से चलने वाले, 'भूतवाह' अग्नि, जल और वायु आदि से चलने वाले, 'धूमयान' वाष्प से चलने वाले, 'शिखोद्गम' पंच शिखी के तेल से चलने वाले, 'मणिवाह' सूर्यकानत मणिकान्त आदि मणियों से चलने वाले और 'मरुत्सखा' केवल वायु से चलने वाले विमान उपलब्ध रहे हैं। इस प्रकार इन आठ विमान चलाने की शक्तियों का वर्णन मिलता है। विश्वकर्मा द्वारा बनाये हुए 'गरुड़' का ही नहीं, अपितु एक 'शातुकुम्भ' नामक बड़े विलक्षण विमान का ब्रह्मवैवर्त पुराण में वर्णन मिलता है।

विश्वकर्माकृत विमान किन-किन गुणों से युक्त होते थे? इसका रहस्योद्घाटन अभी एक प्राचीन शास्त्र द्वारा हुआ है। यह ग्रन्थ महर्षि भरद्वाजकृत 'यंत्र सर्वस्व' है; जिसका वैमानिक प्रकरण और उसमें भी पांच सौ सूत्रों में से केवल चार सूत्र बड़ौदा लायब्रेरी में मिले हैं। इन सूत्रों का हिन्दी अनुवाद 'विमान शास्त्र' के नाम से श्री प्रियरत्न जी द्वारा हो चुका है। इसके दूसरे सूत्र में ''रहस्यज्ञोधिकारी'' अर्थात् रहस्यों का जानने वाला ही विमान चलाने का अधिकारी है। श्री बोधानन्द जी ने ऐसे ३२ रहस्यों की इसमें व्याख्या की है। तीसरा रहस्य है 'कृतक रहस्य' जिसमें विमान के आविष्कारकर्ताओं के ग्रन्थों को यथाविधि मनन कर नई-नई कल्पनाओं द्वारा विमान रचने के लिये सीखने का आदेश है।

विश्वकर्मा जी का ध्येय यह नहीं था कि उनके द्वारा प्रकट की हुई विद्या सीमित काल तक ही स्थिर रहे, वह तो सृष्टि के अन्तिम समय तक मनुष्यों को ऐश्वर्यशाली

बनाने आये थे। शिल्पविद्या के साथ संसार में ऐश्वर्ययुक्त रहने के लिए अनेक शिल्पशास्त्रों की रचना कर अपनी अमर कीर्ति छोड़ गये। विश्वकर्मायम् अध्याय १२ में लिखा है—देवता, मनुष्य अथवा सब प्राणियों के हितार्थ विश्वकर्मा ने शिल्प शास्त्रों की रचना की।

विश्वकर्मा की रचना अर्थवेद अथर्ववेद का उपवेद है। अथर्ववेद की अन्य वेदों में गणना किस प्रकार की जाती है, के विषय में ऋषि दयानन्द ने ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका में लिखा है—ऋग्वेद, यजुर्वेद तथा सामवेद (इन तीनों वेदों) में जो-जो विद्याएं हैं उन सब की रक्षा, उनकी अनेक विद्याओं के सब विघ्नों के निवारण, उनकी विद्याओं की संशय निवृति तथा उन तीनों की गणना अच्छी प्रकार से हो सके, इसके लिए ईश्वर ने अथर्ववेद का प्रकाश किया। अथर्ववेद अन्य वेदों में निर्दिष्ट अनेक विद्याओं और कर्मकाण्डों की पूर्ति करता है, इसीलिए अथर्ववेदी (शिल्पी पंडित) को यज्ञ में ब्रह्मा का स्थान दिया है। मत्स्य पुराण तथा गोपथ ब्राह्मण ३/२ में भी पुरोहित उसी पंडित को बनने के लिए कहा गया है जो अथर्ववेद के मंत्रों का ज्ञाता हो।

इस प्रकार अन्यान्य अनेकों ग्रन्थों में अथर्ववेद का महत्त्व वर्णन कर उसे अन्य वेदों में प्रमुखता दी गई है। इसी अथर्ववेद का उपवेद अर्थवेद है, जिसकी रचना श्री विश्वकर्मा द्वारा हुई है। इसी अर्थववेद को ऋषि दयानन्द ने शिल्प शास्त्रों में प्रामाणिक ग्रन्थ मानते हुए इसे ६ वर्ष तक पढ़ने का आदेश किया है। संस्कार विधि वेदारंभ प्रकरण में लिखा है – 'अथर्ववेद का उपवेद अर्थवेद जिसको शिल्प शास्त्र कहते हैं, जिसमें विश्वकर्मा, त्वष्टा, मयकृत संहिता ग्रन्थ है, उनको ६ वर्ष के भीतर पढ़ के विमान, तार, भूगर्भादि विद्याओं का साक्षात करें।'

विश्वकर्मा ने उपर्युक्त अर्थवेद में दस प्रकार के शिल्पशास्त्रों के नामों के अन्तर्गत समस्त शिल्प विद्या के विषय का प्रतिपादन किया है। उन दस शास्त्रों के नाम, कृषि शास्त्र, जल शास्त्र, खनि शास्त्र, नौका शास्त्र, रथ शास्त्र, विमान शास्त्र, वास्तु शास्त्र, प्राकार शास्त्र, नगर रचना शास्त्र और यंत्र शास्त्र है।

कृषि शास्त्र में अन्न उत्पन्न करने के साधन बताये गये हैं। इस संबंध में बनने वाली सब शिल्प-वस्तुओं के निर्माण की विधि बतलाई गई है। जल शास्त्र में जल की गहराई की खोज, जिस जल में जैसे गुण हों उनकी पहचान करना और दूर-दूर तक बड़ी-बड़ी नदियां या नहरें निकालकर नगरों में जल पहुंचाने की सब विद्याएं जानकर तत्संबंधी वस्तुओं का बनाना खनि शास्त्र में भूगर्भ विद्या के विषय की विद्या से संबंध है। खोदने (खानों) आदि के समस्त भूगर्भ संबंधी विषय पर प्रकाश डाला गया है। नौका शास्त्र में छोटे-छोटे डोंगो से लेकर बड़े-बड़े जलयानों तथा विशाल युद्ध जलपोतों के निर्माण करने व संचालन की विद्या का वर्णन है। रथ शास्त्र में विविध भांति के सुविधा और आरामपूर्वक यात्रा करने योग्य रथों के निर्माण करने का विषय बतलाया गया है।

विमान शास्त्र में गगन में उड़ने वाले रथ अर्थात् वायुयानों के बनाने तथा यथोचित् रीति से चलाने की विद्या बतलाई गई है। वास्तु शास्त्र में छोटे-छोटे गृहों से लेकर बड़े-बड़े देव भवन, राज्य प्रासाद, कुएं-बावड़ियां आदि के निर्माण करने की विद्याओं को विविध भांति से समझाया है। प्राकार शास्त्र में नगर की सुरक्षा के लिए विविध भांति से सुदृढ़ चार दिवारी तथा दुर्ग आदि की प्राचीर बनाने की विद्या का संपूर्ण वर्णन किया गया है। नगर रचना शास्त्र में नगर किस स्थान पर और किस प्रकार बसाया जाए आदि की सम्पूर्ण योजनाओं की विद्याओं पर विशेष रीति से पूर्ण प्रकाश डाला गया है। यन्त्र शास्त्र में प्रत्येक प्रकार के यन्त्रों जैसे ध्वनि वाहक (रेडियो), ध्वनि प्रेषक (तार), काल निर्णायक (बैरोमीटर), दूरवीक्षण (दूरबीन) तथा अन्य भिन्न-भिन्न प्रकार की मशीनें, इंजिन, कल-पुर्जे आदि बनाने की विद्याओं का रहस्य बतलाते हुए उनके निर्माण करने की क्रियाएं समझाई गई हैं।

अपराजित नामक एक ग्रन्थ में लिखा है कि उपर्युक्त शास्त्रों के प्रत्येक विभाग पर विश्वकर्मा ने १२ हजार ग्रन्थ लिखकर अर्थववेद की पूर्ति की थी।[१३]

अर्थात् अथर्ववेद का उपवेद अर्थवेद जो कि शिल्प शास्त्र है, उसको विधिवत सम्पूर्ण करने के लिए विश्वकर्मा ने १२ हजार शास्त्रों की रचना की और उनका चौथे युग अर्थात् कलियुग में आकर चार हजार शास्त्रों से समावेश हो गया।

यह बारह हजार अथवा चार हजार ग्रन्थ तो क्या उनके नाम भी इस समय नहीं मिलते। अब तो केवल इस विषय में लगभग ३५० ग्रन्थों के नाम हमें विविध पुस्तकों में लिखे हुए मिलते हैं। किन्तु यह भी सब विश्वकर्मा या उनके पुत्रों मनु, मय आदि के लिखे हुए नहीं हैं। यह अधिकांश में पश्चात के अन्य ऋषियों के द्वारा लिखे हुए हैं और बहुत से ग्रन्थ ऐसे भी हैं, जिनके रचयिताओं का नाम नहीं मिलता; किन्तु उनको देखने से पता चलता है कि यह विश्वकर्माकृत ही हो सकते हैं। इनमें से जिन शास्त्रों को इस समय विश्वकर्मा और मनु, मय आदि रचित कहा जा सकता है, वे यह हैं : —

विश्वकर्मा कृत : अय तत्व, विश्वकर्ममत, विश्वकर्मीय विश्व बोध, वास्तुशास्त्र, प्रासाद केसरी, प्रासाद कीर्तन।

मनुकृत : गुरुदेव पद्धति, मनुसार, मनुतन्त्र, मनुमत।

मयकृत : शिल्प शास्त्र ज्ञान, शिल्प शास्त्र मयमत, मय शिल्प, प्रयोग मंजरी और सूर्य सिद्धान्त।

देवज्ञकृत : अयादि लक्षण, उद्दिष्टानयन केसरी वास्तु, कुण्डमार्तण्ड, चित्र शालम, दैवेज्ञस्मृति और छाया पुरुष लक्षण।

त्वष्टा और शिल्पी : इनके रचित ग्रन्थ बहुत से उनमें मिलेंगे जिन ग्रन्थों में रचयिताओं का पता नहीं चलता।[१४]

उपर्युक्त रचनाओं के अतिरिक्त बहुत से ग्रन्थ अन्य ऋषियों द्वारा भी लिखे हुए हैं। अत: उन ऋषियों का नाम यहां उल्लेख कर देना भी उचित होगा। मत्स्य पुराण में लिखा है कि मत्स्य जी ने मनु से शिल्पाचार्यों का वर्णन इस प्रकार किया 'भृगु', अत्रि, वशिष्ठ, विश्वकर्मा, मय, नारद, अनग्नजित, विशालक्ष, पुरन्दर, ब्रह्मा, कुमार, नन्दीश, शौनक, गर्ग, वासुदेव, अनिरूद्ध, शुक्र और वृहस्पति या अठारह ऋषि शिल्प शास्त्र के प्रचार करने वाले सब लोकों में प्रसिद्ध हैं।[१५]

इनके अतिरिक्त गार्गेयागम नामक ग्रन्थ में और भी शिल्प शास्त्रों के रचयिताओं के नाम मिलते हैं। कश्यप, अगस्त्य, भृगु, गौतम, भार्गव, गौरादि, बोधक, पवन, मणि, पारासर, दैवज्ञ, मानसार, दीप्त, अत्रि, मरीचि, वैखानस, कौंडिन्य यह सब ऋषि शिल्प शास्त्रों के रचियता हुए।[१६]

यहां हम कुछ ऐसे शिल्प शास्त्रों के नामों को उल्लेख करते हैं, जिनके रचयिताओं के नामों का अभी ठीक पता नहीं चलता—वास्तु सांख्य, अपराजित, वास्तु शास्त्र प्रासादानु कीर्तन, चक्र शास्त्र, जलर्गल, पक्षिमनुष्या लक्षणम्, कौतुक लक्षण, मूर्ति लक्षण, विमान लक्षणम्, रथ लक्षणम्, प्रतिमा दिव्यादिवचन, सकलधिकार तथा विश्वविद्याभरण। इन ग्रन्थों की सूची 'मध्यकालीन भारतीय संस्कृति' के पृष्ठ २३३ में दी हुई है।[१७]

इस ग्रन्थ के आदि में और भी पच्चीस शिल्प शास्त्रों के उनके रचियताओं सहित नाम दिये हुए हैं। इनके अतिरिक्त और भी बहुत से ग्रन्थों के नाम मिलते हैं, जो सब मिलाकर ३५० के लगभग होते हैं; जिनमें से ६८ ग्रन्थों के नाम यहां उल्लेख कर दिये हैं शेष लगभग २७५ ग्रन्थों के नाम खोज करने के पश्चात प्रस्तुत किए जायेंगे।[१८]

मद्रास मैनुस्क्रिप्ट लायब्रेरी में भी इक्कीस प्राचीन हस्तलिखित शिल्पशास्त्र रखे हुए हैं; जिनके नाम हैं —विश्वकर्मीय शिल्पशास्त्रम्, शिल्प संग्रह, शिल्पसार, शिल्परत्न, शिल्प शास्त्रम्, मयमत शिल्प शास्त्रम्, मयमत वस्तु लक्षणम्, मयमत वास्तु शास्त्रम् सनतकुमार वास्तु शास्त्रम्, मानसार (भिन्न-भिन्न नौ प्रतियां) इनमें 'विश्वकर्मीयम् शिल्प शास्त्रम् नामक ग्रन्थ खजूर के पत्तों पर लिखा हुआ है।[१९]

बीस हस्तलिखित शिल्प शास्त्र लन्दन स्थित इण्डिया ऑफिस लयब्रेरी में रखे हुए हैं; जिनमें एक 'विश्वकर्मा पुराण' भी है जो तालीपट के पत्तों पर लिखा हुआ है।[२०]

जिस आर्य और देवभूमि पर इतनी लोकोपयोगी और ऐश्वर्यशाली शिल्प विद्या का विकास हुआ, उसी मातृभूमि निवासियों ने इसे यहां तक भुलाया कि सहस्रों वर्षों तक तो वह केवल 'उड़न खटोलों' की कथाओं में ही सीमित रहा। यह सब कुछ वेद, उपवेद तथा शिल्प शास्त्र आदि ग्रन्थों के लुप्त हो जाने से हुआ। हमनें उन ग्रन्थों की अवहेलना की और यूरोप देश वाले इनको भारत से उठाकर ले गए थे, और उन्होंने इनसे यथोचित

लाभ प्राप्त किया। जिस समय हम यहां उड़न खटोलो की कथा-कहानियों से मनोरंजन में लीन थे, उस समय वे वेदोक्त विद्याओं द्वारा गगन में उड़ने की तैयारी कर रहे थे?

हमारे ग्रन्थों के ह्रास होने का तो आप इससे अनुमान लगा सकते हैं कि स्वयं ऋषि दयानन्द को जर्मनी से वेद मंगवाने की आवश्यकता पड़ी। धनुर्वेद के लिए तो उन्होंने एक व्याख्यान में यहां तक कहा था कि – 'मैनें पूरे आर्यावर्त को ढूंढ डाला किन्तु धनुर्वेद के केवल ढाई पन्ने मिले।' आज भी भारतीय पुस्तकालयों की अपेक्षा हमारे प्राचीन ग्रन्थों का संग्रह यूरोप की लायब्रेरियों में ही कहीं अधिक मिलेगा? यही कारण है कि आज वे सब राष्ट्र कला-कौशल सम्पन्न हैं और हमें छोटी-छोटी वस्तुओं के लिए भी उनके मुंह की ओर ताकना पड़ रहा है।

विदेश ही नहीं वरन् इस प्रकार देश में भी यत्र-तत्र अनेक स्थानों पर विविध विद्याओं से सम्पन्न उपयोगी ग्रन्थ बिखरे हुए हैं, किन्तु खोज बिना यह सब कैसे मिल सकते हैं? उद्योगी, खोजी, विद्वान लोगों को ऐसे ग्रन्थों की खोज कर राष्ट्र को लाभ पहुँचाना चाहिए।

सन्दर्भ :–

१. भुवनद्वार विचार, लिपि समय १९वीं शताब्दी, पत्र संख्या–२०, ग्रन्थाङ्क –७४१०
२. नालन्दा विशाल शब्द सागर, आदीश बुक डिपो, दिल्ली, सम्वत् २००७ संस्करण, पृष्ठ १३४३
३. मूलचन्द शर्मा, विश्वकर्मा दिग्दर्शन, शिल्प शास्त्र प्रकाशन भण्डार, दिल्ली, पृष्ठ–२३
४. उपरोक्त पृष्ठ–४३
५. डॉ. उमेश पूरी 'ज्ञानेश्वर', विश्वकर्मा प्रकाश, रणधीर, प्रकाशन, हरिद्वार, पृष्ठ–६–७
६. मूलचन्द शर्मा, विश्वकर्मा दिग्दर्शन, शिल्प शास्त्र प्रकाशन भण्डार, दिल्ली, पृष्ठ–६४
७. विश्वकर्मा वंश भास्कर, पृष्ठ ११२, प्रमाण संग्रह पृष्ठ–६३
८. सायणाचार्य कृत भाष्य ऐतरेय ब्राह्मण पंजिका ८ खण्ड २१ अध्याय –५
९. ऋ. मंडल १ अध्याय १७ सूक्त १२० मंत्र ११ तथा सिद्धान्त कौमुदी में पाणिनी सूत्र ६/२/७७
१०. शिव पुराण अध्याय २३
११. शिल्प संहिता की प्राचीन हस्तलिखित प्रति अणहिलपुर (गुजरात) के जैन मुस्तकालय में विद्यमान है।
१२. शुक्रनीति अध्याय १ श्लोक ३६७
१३. अपराजित नामक ग्रन्थ का उल्लेख विश्वब्रह्म कुलोत्साह में आया है।
१४. मूलचन्द शर्मा, विश्वकर्मा दिग्दर्शन शिल्प शास्त्र प्रकाशन भण्डार, दिल्ली, पृष्ठ १०४
१५. मत्स्य पुराण अ. २५१ श्लोक २.३.४
१६. गार्गेयागम प्रथम अध्याय
१७. मूलचन्द शर्मा, विश्वकर्मा दिग्दर्शन शिल्प शास्त्र प्रकाशन भण्डार, दिल्ली, पृष्ठ–१०६
१८. –उपरोक्त–, पृष्ठ–१०७
१९. –उपरोक्त–, पृष्ठ–१०८
२०. –उपरोक्त–, पृष्ठ–१०८

श्री अंगिरा शोध संस्थान
४१९/३, शान्ति नगर, सुभाष चौक
जीन्द – १२६१०२ (हरियाणा)

✍ सर्वेक्षण

हिमाचल प्रदेश में नाग देवता

• डॉ. सूरत ठाकुर

हिन्दू मान्यता के अनुसार नाग देवता भगवान विष्णु की शेष-शय्या के रूप में, शिवजी के गले के हार के रूप में, समुद्र मंथन के समय रस्सी के रूप में शोभा बढ़ाते रहे हैं। कद्रू के पुत्र ये मुख्य नौ नाग अनन्त, वासुकि, शेष, पद्मनाभ, कम्बल, शंखपाल, धृतराष्ट्र, तक्षक और कालिय हैं। पश्चिमी हिमालय विशेषकर हिमाचल प्रदेश में ये नाग देवता अनेकों नामों से पूजे जाते हैं। इनके यहां असंख्य स्थान व मन्दिर हैं। ये लोगों के सुख-दुख में बराबर के भागीदार बनते हैं। किसी रोग के आने पर, पशुओं या खेतों को किसी प्रकार की हानि होने पर नाग देवताओं से उसका समाधान खोजने की प्रार्थना की जाती है। यहां अलग-अलग क्षेत्रों में इनकी उत्पत्ति भिन्न-भिन्न रूपों में हुई है। इनका सम्बन्ध ठण्डे जल के स्वच्छ स्रोतों से इतना अधिक जोड़ा जाता है कि यहां के लोग स्रोतों का प्रस्फुटन प्रायः नाग देवताओं के कारण ही मानते हैं। यहां पर इनके असंख्य स्थान, मन्दिर, बावड़ियां, चश्में, सरोवर तथा जंगल आदि हैं जिनमें ये वास करते है। लगभग समस्त हिमाचल में नाग देवताओं के असंख्य स्थान व मन्दिर हैं। ये मन्दिर प्रायः देवदार के कुंजों के मध्य या निर्जन पर्वतीय भागों में या जलस्रोतों के समीप पाये जाते हैं।

नाग मन्दिरों में रखी मूर्ति के चारों ओर पत्थर का बना हुआ सर्प बहुत से मन्दिरों में देखा जा सकता है। मन्दिरों में पत्थर या लोह धातु से निर्मित सर्प की आकृतियां भी मिलती हैं। चम्बा ज़िले के भटियात, भरमौर, चुराह, तीसा, पांगी आदि क्षेत्रों में नाग देवताओं के असंख्य मंदिर व स्थान हैं। हिमगिरि जोत का सरोवर अंजनी तीर्थ के नाम से प्रसिद्व है। यहां एक सरोवर में अंजनी नाम की नागिन प्रकट हुई मानी जाती है। यह जगह हिमगिरि कोठी से १० किलोमीटर दूर ११००० फुट की ऊँचाई पर स्थित है। लोग चर्म रोगों के निवारण हेतु यहां स्नान करने आते हैं। वासुकि, महला, खज्जी और हिंजार नाग इसी अंजनी नागिन के पुत्र माने जाते हैं। बनीखेत से डलहौज़ी होते हुए २७ किलोमीटर की दूरी पर खजियार में खज्जी नाग का स्थान व मन्दिर बना है। यह नाग विणतरू नाग का भाई माना जाता है। खजियार का यह मन्दिर १२वीं सदी से पूर्व स्थापित हुआ माना जाता है। इस नाग के मन्दिर का जीर्णोद्धार राजा पृथ्वीसिंह, जिसका कार्यकाल कलियुगाब्द ४७४३-४७६६ (ईस्वी सन् १६४१–१६६४) तक रहा, की धात्री दाई वाटलू ने करवाया था। मंदिर के गर्भगृह में ३ फुट ऊँची तथा डेढ़ फुट चौड़ी प्रस्तर प्रतिमा

स्थापित है। प्रतिमा के दायीं तरफ छोटी सी विष्णु की प्रतिमा रखी गई है। गर्भगृह आठ फुट वर्गाकार में बना है। गर्भगृह के सामने २० फुट वर्गाकार में बना लकड़ी के खम्बों पर बरामदा है जहां बैठकर श्रद्धालु भजन कीर्तन करते हैं। लकड़ी के खम्बों पर १६वीं सदी में चम्बा नरेश बलभद्र बर्मन ने पांडवों की आदमकद काष्ठ प्रतिमायें स्थापित की थी। खम्बों के ऊपर कौरवों की मूर्तियों को उकेरा गया है। ऐसा लगता है कि इन्हें खम्बों पर टांगा गया हो। मन्दिर पहाड़ी शैली का बना हुआ है।

कुगती में केलंग नाग का स्थान व मन्दिर है। लाहौल से मणिमहेश जाने वाले यात्री कुगती जोत होकर ही वहां पहुंचते हैं। कुगती के केलंग नाग के सम्बन्ध में जनश्रुति है कि एक बार कुगती के पशुओं में खुर रोग फैल गया तब यह नाग लाहौल से कुगती के एक पुहाल के मेंढे के सींग पर सर्प के रूप में बैठ गया और दुगही नामक जगह में जा उतरा और तीन पीढ़ियों तक वहीं निवास करता रहा। यहां पर भी केलंग नाग का स्थान है। आते जाते श्रद्धालु इसको फूल भेंट करते हैं। कुगती से केलंग नाग दरुन नामक स्थान पर चला गया और वहां एक स्रोत के समीप अति दुर्गम पहाड़ी पर चढ़ गया। जब गांव वालों ने उससे नीचे उतरने का आग्रह किया तो उसने लोगों से कहा कि कुगती में उसका मन्दिर बनवाया जाये तभी वह नीचे उतरेगा। यह कह कर वह अन्तर्ध्यान हो गया। उसकी इच्छानुसार मन्दिर का निर्माण कार्य शुरु हो गया। मन्दिर की नींव खोदते समय पत्थर की एक त्रिमुखी प्रतिमा मिली और प्रतिमा के निकलते ही उस स्थान पर एक स्रोत फूट पड़ा। मन्दिर बनने पर भेड़ बकरियों के रोग स्वत: ही खत्म हो गये।

भटियात के रायपुर में विणतरू नाग का मन्दिर पहाड़ी शैली में बना है। यह शक्तिशाली नाग देवता के रूप में प्रसिद्व है। इस नाग ने समय-समय पर चम्बा के राजाओं को मुश्किल परिस्थितियों से उबारा है। कहा जाता है कि एक बार चम्बा के राजा को दिल्ली दरबार में एक सरकारी समारोह में बुलाया गया। वहां एक बहुत बड़ी खाई खुदवाई गई और नाग भक्त राजा से कहा गया कि वह घोड़े पर सवार होकर खाई को पार करे। राजा ने विणतरु नाग का ध्यान करके घोड़े को आगे बढ़ाया और आसानी से खाई पार कर गया। इसके बाद सुल्तान ने उसे खाने पर बुलाया। जब राजा भोजन करने बैठ गया तो भोजन की थाली उससे बहुत दूर रख दी। तीन मुंह वाला जग भी थाली के पास रख दिया और कहा गया कि अगर तुम्हारे नाग देवता में शक्ति है तो भोजन का थाल स्वत: आपके पास पहुंचना चाहिए और इस तीन मुंह वाले जग से पानी पीते हुए पानी नहीं गिरना चाहिए। राजा ने मन ही मन नाग देवता को याद किया और कुछ ही क्षणों में थाल के नीचे नाग देवता प्रकट हुए। नाग ने थाली को अपने मुंह से सरकाकर राजा के आगे कर दिया और पानी के जग को अपनी पूंछ से लपेटकर राजा के पास ला दिया। तत्पश्चात् अपना आकार छोटा करके जग के दो मुंह इस प्रकार बंद कर दिये कि राजा के पानी पीते हुए एक बूंद भी पानी नहीं गिरा। बाद में चम्बा लौटकर राजा ने विणतरू नाग

का मन्दिर बना दिया और सोने चांदी के गहने भेंट किए।

चम्बा के ही बड़ागांव में बुहारी नाग, तुन्दा में दिग नाग, सूप में कोटरु नाग, पुलनी में गोरकू नाग, पन्सेही में लोटू नाग के मन्दिर व स्थान हैं। पांगी के साच गांव में जोगेश्वर, प्रौढ़, माहल, पिन्याट तथा धारे नाग के मंदिर हैं। साच गांव में भाद्र शुक्ल की नवमी को प्रतिवर्ष जोगेश्वर तथा प्रौढ़ नागों के मिलन के रूप में मेला लगता है जिसमें भेड़ बकरियों की बलि दी जाती है। मिलन के बाद ये दोनों माहल नाग से मिलने जाते हैं। चम्बा के कुठेड़ गांव में मण्ढौर नाग का मन्दिर है। यह नाग प्राकृतिक प्रकोप से लोगों की रक्षा करता है। इसका छोटा भाई पारंगल नाग पारंगल गांव में पूजित है जहां इसका छोटा सा मन्दिर है। पांगी के किलाड़ में दैंत नाग का मन्दिर है। पंगवालों में इस नाग की बहुत मान्यता है। यह अन्न और पशुधन का मालिक माना जाता है। कहा जाता है कि यह नाग लाहौल में रहता था। वहां पर यह मानव बलि लिया करता था। कित्थु नामक गद्दी ने इसकी मूर्ति चन्द्रभागा में फैंक दी थी जो बहते हुए पांगी पहुंच गई। यह मूर्ति एक पंगवालन की गाय का दूध पीने लगी। एक दिन पंगवालन ने मूर्ति को दूध पीते हुए पकड़ लिया। तब मूर्ति ने मानव रूप धारण कर महिला से इच्छा प्रकट की कि वह इसे अपने गांव ले चले और जहां पर भी मूर्ति भारी होगी वहीं उसकी स्थापना करे। किलाड़ के नीचे हुणसाण में मूर्ति भारी हो गई। महिला ने वह ज़मीन पर रख दी। बाद में वहीं नाग की स्थापना की गई और उसका मन्दिर बनवाया गया। इसका मन्दिर जंगल के मध्य देवदार के वृक्षों से घिरा है। भवन का मुख्यद्वार काष्ठकला की खुदाई से सुसज्जित है। मन्दिर के आसपास लोहे की त्रिशूलों के ढेर लगे हैं। मन्दिर के आसपास ही लकड़ियों की असंख्य पट्टियों पर सांप की आकृतियां उकेरी गई हैं।

जरहियूं नाग की भी पांगी में बहुत मान्यता है। इसके छोट-छोटे मन्दिर पुर्थी, हिलोर, कुमारशूड़ आदि गांवों में है। करियास में खण्डव और गोधन नागों के स्थान हैं। इनके मन्दिरों में लगी लकड़ी पर काष्ठ कला का कार्य हुआ है, जिनमें नागों की आकृतियां बनी हुई है। टुण्डरू गांव के शाणा नामक व्यक्ति की तीन बेटियों में सबसे छोटी बेटी अण्डारी सलाह चोटी पर नागिन के रूप में स्थित है। यह जोत लांघने वालों को भटकने से बचाती है। सुराल गांव में सुराल नाग देवता का मन्दिर है। किलाड़ के ही एक गांव क्वास में स्थानीय शैली में निर्मित नाग देवता का मन्दिर है। यह देवता भी पशुओं की बीमारियों पर नियन्त्रण रखता है।

पंगवाल वासियों के लिए नाग देवता अन्नदाता हैं, पानी के सर्जक हैं, वर्षा के नियन्त्रक हैं, पशुपालक और चरागाहों के मालिक हैं। इनके पूजन के बिना न ही चूरी और न ही गाय का दूध व घी खाया जाता है। नागों के मन्दिरों में खांडे, लकड़ी की तलवार, हल, जूं या जुआं तथा लोहे तथा लकड़ी पर उकेरे सांप जिन्हें सफलू कहा जाता है, चढ़ाये जाते हैं।

भरमौर क्षेत्र में भी नागों को मानने की परम्परा विद्यमान है। गद्दियों के अनुसार नाग देवता चरागाहों में बसते हैं जहां इनके छोट-छोटे मन्दिर बनाये गये है। क्वर्सी गांव में इन्द्रू नाग का बहुत ही सुन्दर एवं पुरातन मन्दिर पहाड़ी शैली में बना है। मन्दिर के प्रांगण में देवदार के पेड़ हैं जिनकी रक्षा इन्द्रू नाग करता है। मन्दिर में प्रयुक्त लकड़ियों पर नाग की आकृतियां उकेरी गई हैं। कही-कहीं मानवाकृति भी बनाई गई है। इस गांव में पानी का एक चश्मा है। इसे भी नाग की करामात माना जाता है। चन्हौता गांव में नाग इन्द्रू तथा वासुकि नाग का संयुक्त मन्दिर है। मन्दिर के साथ नाग की पुरानी बणी है जिसमें पेड़ काटने पर नाग देवता कुपित हो जाते हैं। इन्द्र नाग का सदियों पुराना मन्दिर रण्हूकोठी के सामरा गांव में भी बना है। इसी गांव के सामने घटोहर गांव के ऊपर चरागाह में भटौत नाग का देवालय है। पंजसेई गांव में जल देवता के रूप में नाग देवता का मन्दिर है। कहा जाता है कि पंजसेई गांव में जल का अभाव था। बुढल के पार कुठेड़ नाग के गांव में पानी की कमी नहीं थी। एक दिन पंजसेई का नाग कुठेड़ नाग के गांव में मेहमान बनकर गया और एक तुम्बे में पानी लेकर आ गया। गांव में पानी की कमी नहीं रही। जब कुठेड़ के नाग को पानी ले जाने का पता चला तो उसने बाण चलाकर नाग की टांग तोड़ दी। इसलिए पंजसेई के नाग को लुट्टु नाग भी कहा जाता है। गद्दी लोगों में यह भी मान्यता है कि मणीमहेश पर्वत पर नाग शैल रूप में अवस्थित है जो भाग्यशाली भक्त को ही दर्शन देता है।

चुराह क्षेत्र के भजराडू में दो शहतूतों की छांव तले भुजगर नाग का पहाड़ी शैली में एक प्राचीन मन्दिर बना है। मन्दिर के नीचे एक तालाब था जो अब सूख गया है। वासुकि नाग परगना जूण्ड केसर नामक गांव में पूजा जाता है। यहां इसके मन्दिर में मानव कद की मूर्ति विद्यमान है। घुलेई बैरा में चलियसर नाग, बाड़ाधार (जुंगरा) पंचायत में गोया नाग, चरड़ा (चांजू) में हिम नाग, मण्डोलू में मण्डोलू नाग, सलूणी में सलूणी नाग, देवगाह में देवगाह नाग, भलेई परगना में सुंधार नाग ऊपरी चुराह और भद्रवाह में माहल नाग के मन्दिर हैं। निचले चुराह के तेलका गांव में भी माहल नाग का मन्दिर है। सालवा पंचायत के लौधर नामक स्थान पर वासुकि नाग का एक मनोहर मन्दिर है। रोण धार पर रौणी नागिन अवस्थित है। जनश्रुति है कि वासुकि नाग के मन्दिर के आस पास पेड़ नहीं थे। वासुकि नाग ने चोरी से रौणी नागिन के परिसर से कुछ पेड़ उखाड़े और अपने मन्दिर के परिसर में फैंके। कुछ पेड़ तो सीधे पड़े परन्तु कुछ उल्टे पड़े। उल्टे पेड़ आज भी विद्यमान है। जैसे ही रौणी नागिन को अपने पेड़ों की चोरी का पता चला तो उसने भागते हुए नाग पर शिला से प्रहार कर दिया जो वासुकि नाग के कान पर लगा जिससे वह बहरा हो गया। इसलिए वासुकि को यहां पर टौणा नाग के नाम से भी जाना जाता है। तीसा के मंगली पंचायत के मंजौर गांव में माहल नाग का शिखर शैली का मन्दिर है। साथ ही नाग देवता का पहाड़ी शैली में बना भण्डार भी है जिसमें देवता का अनाज, वाद्ययन्त्र इत्यादि

रखे जाते हैं। विशेष पर्वों में साजिन्दे तथा कारदार आदि पदाधिकारी भी इसमें रहते हैं।

कांगड़ा जिला के धर्मशाला के पास भागसू नाग का मन्दिर है जहां एक पानी का सरोवर है। कहा जाता है कि भागसू राजस्थान अजमेर के राजा थे। एक बार वहां भयंकर सूखा पड़ा। तब जल लाने के लिए राजा धौलाधार की पहाड़ियों में स्थित डल झील पर आया। उसने अपने कमण्डल में जल भर कर झील को सुखा दिया और जल से भरा हुआ कमण्डल लेकर अपने देश चल पड़ा। जब वहां के स्थानीय नाग देवता को इसका पता चला तो उसने भागसू पर आक्रमण कर लिया जिसमें भागसू हार गया। लड़ते हुए इस स्थान पर कमण्डल का जल गिर गया था जो पांच धाराओं में प्रस्फुटित होकर तालाब में इकट्ठा हो गया। भागसू के कमण्डल से जल गिरने के कारण ही इस स्थल का नाम भागसू पड़ा। एक अन्य कथा के अनुसार कहा जाता है कि वासुकि नाग भगवान शिव का अमृत पात्र चुराकर ले जा रहा था तो शिव ने उसके पीछे अपना त्रिशूल छोड़ा। भागसू में आकर वासुकि के हाथ से अमृत पात्र गिर गया जिससे यह अमृत कुण्ड बन गया। अमृत जल के कारण इस सरोवर को तीर्थ के रूप में मान्यता प्राप्त है।

बैजनाथ से लगभग २३ किलोमीटर की दूरी पर सुल्लाह के पास एक गुफा में नागेश्वर महादेव का स्थान है। यहां पर नाग देवता की पत्थर पर आकृति बनी हुई है। इसके साथ ही भगवान शिव तथा माता पार्वती और गणेश की प्रतिमाएं भी विराजमान हैं। चतरोली गांव में वारी नाग का मन्दिर है। इस मन्दिर को नूरपुर के कलस राना ने बनवाया था और बाद में राजा जगत ने इसका जीर्णोद्धार किया था। उसने ही मन्दिर में नाग देवता की मूर्ति स्थापित की थी। कांगड़ा के भंडवार में नागिन माता का मन्दिर है जिसे बड़ी नागिन कहा जाता है। कंडवाल में छोटी नागिन है। गंगथ, डाहकुनाला तथा मलोट गांवों में भी नागिन मन्दिर हैं।

कुल्लू ज़िला में वासुकि को नागों का जन्मदाता माना जाता है। वासुकि नाग का स्थान एवं मन्दिर नगर गांव से ऊपर हलाण गांव में है। इस नाग को यहां वासुका तथा वासू भी कहा जाता है। इसका मूल स्थान हलाण गांव से ऊपर नगौणी में है जहां सौर नाम से एक दल दल जगह है। जिसके आगे एक पानी का झरना है। वासुकि का असली स्थान इसी तालाब तथा झरने के पास है। पराशर ऋषि की भारथा में उल्लेख आता है कि वासुकि नाग दांत के मसूड़ों से उत्पन्न हुए हैं:—

काना ते हूरवीर बागर पन्ने
भासू ते वासकि नाग पन्ने।

गोशाल गांव की एक कन्या के साथ वासुकि ने विवाह रचाया था और उनके १८ नाग पुत्र उत्पन्न हुए। मां ने उन्हें उठाकर एक बड़े घड़े 'भांदल' में रखा और वहीं उनको दूध देना प्रारम्भ किया। उन्हें दूध पिलाया जाता रहा और देवता समझ कर धड़छ में धूप जलाकर पूजा होती रही। एक दिन उनकी मां किसी काम से बाहर गई हुई थी। नागों को दूध पिलाने

का काम उस घर की बहू को करना पड़ा। बहू एक हाथ में धड़छ (पूजा का पात्र) पकड़ कर तथा दूसरे हाथ में दूध का कटोरा लेकर भांदल के पास चली गई। ज्यों ही उसने भांदल का ढक्कन खोला तो छोटे-छोटे नाग घड़े के मुंह से दूध पीने के लिए लपलपाने लगे। उन्हें देखकर वह डर गई और उसी डर में उसके हाथ से पकड़े हुए धंनियारे से जलता हुआ धूप घड़े में गिर गया और जलते अंगारे नागों के ऊपर गिर गए। भांदल के अन्दर उथल-पुथल मच गई। ऐसी भगदड़ मच गई कि सभी नाग भांदल से निकल कर जिधर भी रास्ता मिला भाग खड़े हुए। एक नाग की आंख जल गई और वह वहीं गोशाल में रहा। अन्य नाग इधर-उधर दूसरे गांवों को चले गए। जो नाग वहीं रहा उसे कंचन तथा काणा नाग कहा जाने लगा। कंचन नाग ने कुछ समय तक रोहतांग में जाकर व्यास ऋषि के पास रह कर तप किया था। इसीलिए गांव में जो रथ बना है उसमें कंचन नाग के साथ व्यास ऋषि तथा गौतम ऋषि भी विराजमान हैं। कंचन नाग अर्थात् गोशाली नाग का मन्दिर काठकुणी की चिनाई से युक्त पहाड़ी शैली में बना है। दीवारों और चौखटों पर नक्काशी की हुई है, जिसमें आदमी, घोड़े, देवते, सांप, पक्षी आदि अंकित हैं। मंन्दिर में रई, तोस व देवदार की लकड़ी प्रयुक्त हुई है। मन्दिर के सिरे पर अढ़ाई फुट मोटा और बीस इंच चौड़ा बदोर लगा है। मन्दिर के सामने लगभग ६० फुट लम्बी ध्वजा खड़ी की गई है।

अठारह नागों में जो नाग आग के प्रभाव से काला हो गया उसका नाम काली नाग पड़ गया। यह नाग शिरढ़ गांव में पहुंच गया और वहां अपने लिए स्थान का चयन किया। शिरढ़ में काली नाग का मन्दिर व रथ है। यह नाग शिरढ़ से मणिकर्ण घाटी के मतेउड़ा में आया। मतेउड़ा में भी इसका मन्दिर व रथ बना है। धुएं के प्रभाव से जो नाग धुएं जैसे रंग वाला हो गया उसे धूमल नाग के नाम से जाना जाने लगा। यह नाग हलाण गांव में स्थापित हुआ। जिस नाग का रंग पीला हो गया, उसे पीउंली नाम मिला। यह नाग बटाहर गांव में बस गया और पूजा जाने लगा। अन्य नाग तो गोशाल से नीचे की ओर आये जब कि सागू नाग रोहतांग की ओर भागा। उसने रोहतांग के पास एक खोल अर्थात् गड्ढे में अपना निवास स्थान बनाया। जिस खोल में यह नाग रहता है उस खोल को सागू खोल के नाम से जाना जाता है। मढ़ी जिसका पुराना नाम सुमा थौलटू था के थोड़ा नीचे से आने जाने वालों को दो नाग देवता दर्शन देते रहते हैं। जिस स्थान पर ये नाग देवता मिलते हैं इसे नाग रुआड़ी कहते हैं। बाहन्डू नाग ने नगर में अपना निवास स्थान बनाया।

भलोगी गांव में आज़त नाग का मन्दिर व स्थान है। जौउसा गांव में जौउसू नाग का स्थान व मन्दिर है। कूमर नाग व्यासर गांव में आकर बस गया। इसी तरह कायस में माहुटी नाग, टकरासी में टकरासी नाग, सिरीगढ़ में सिरी नाग, केउली वन में शंखू नाग, बूंगा में छमाहू नाग, प्रीणी में फाहल नाग, भनारा में शिरघणी नाग, शरशा में शरशाई नाग, बालो में बालू नाग, तथा पुनन में पुनन नाग के नाम से पूजित हुए। ये सभी नाग समय-समय पर अपने मूल स्थान गोशाल में आते हैं। गोशाल में वह भांदल अभी भी

एक मन्दिर में मौजूद है। इसे भांदल माता के नाम से जाना जाता है। दियार गांव में त्रियुगी नारायण के रथ में शेष नाग विराजमान है। शेष नाग का मोहरा निगना-कमांद की भगवती मडासना के साथ चौपाड़सा नामक स्थान में प्रकट हुआ है। इस स्थान पर इनका छोटा सा मन्दिर पहाड़ी शैली में बना है। प्रत्येक तीन वर्ष के पश्चात् शेषनाग इस स्थान पर शक्ति ग्रहण करने हेतु जाता है।

सैंज घाटी के वुपण गांव में रिंगू नाग का मन्दिर पहाड़ी शैली में बना है। सिराज घाटी के सरेउलसर तथा घियागी में बूढ़ी नागिन के मन्दिर हैं। सरेउलसर में मन्दिर के सामने एक झील है जिसका पानी हमेशा निर्मल रहता है। जब कभी भी झील में कोई पत्ता इत्यादि गिर जाता है तो आंभी नाम की चिड़िया उस पत्ते को तुरन्त उठा लेती है। बूढ़ी नागिन के १८ पुत्र हुए हैं जिनमें एक मत के अनुसार बछेरु, शिलडू, खाद्री, डोवा, खरखाउ, द्वाशी, विनड़ी, रखाउ, शनाणी, पजाहरी, कुइरी, टुकरासी, मरोटी, सेरी, सरेउड़ी, लंगीशरी, बारली, तथा ध्नाई है। दूसरे मत के अनुसार भडहोशा, पलाइच, नोहाण्डा, चुरली (बगड), रियासी (बरामगढ़), तराड़ी, कतमोरी, शरशाई, कुईकण्डा, देवरी (जाबड), दुटणानाग (चुआई), धुडुम्बी (जलोड़ी),पनेउ (जंजा),छतरी (राधेपुर),पटारनी, ठारुई, शियाड़ी, जीभी, मोहगी (सुकेत) हैं। कूईर का कूई नाग, देथवा का रई नाग, डमेहड़ी का नगेला नाग भी इनके पुत्र माने जाते हैं। डमेहड़ी के नगेला ने चींटी बनकर अपनी माँ के दुश्मन तांत्रिक उदूबरडाई के कलेजे को डसा था जिससे उसकी मौत हो गई थी।

कोठी सारी के धरमोट गांव से तीन किलोमीटर ऊपर ओखली के आकार का स्थान है। इस स्थान पर एक सरोवर है। इसे नाग सरोवर के नाम से जाना जाता है। ओखलीनुमा इस स्थल के बीचों बीच नाग का मन्दिर बना है। यहां पर नाग देवता भिन्न-भिन्न रूपों में श्रद्धालुओं को दर्शन देते हैं। सूखा पड़ने तथा बीमारियां आदि प्राकृतिक प्रकोपों के आने पर नाग देवता के गूर इस मन्दिर में एक सप्ताह तक भूखे रहकर तपस्या करते हैं। भगवान शिव ने मणिकर्ण के द्रौणी प्रौणी में रुद्र नाग के रूप में अपने को प्रकट किया है। इस स्थान पर रुद्र नाग का एक झरना है जिसे पवित्र तीर्थ के रूप में जाना जाता है। कोठी भलाण के खन्यारगी गांव के उतरी भाग में शेष नाग का सरोवर जंगल के बीचों बीच स्थित है जिसे 'सौरा आगै' कहते है। सरोवर के पास छोटा सा शेषनाग का मन्दिर बना है। मन्दिर में एक पत्थर की मूर्ति अवस्थित है। पास में एक शंख, लोहे की घण्टी तथा एक धड़छ (धूम्रपात्र) रखा रहता है। इस मन्दिर का दरवाज़ा कभी भी बन्द नहीं किया जाता है। यहां पर कोटला का छमाहू नाग प्रत्येक वर्ष स्नान करने आता है।

बंजार घाटी के पगौणा में टरुणू नाग का चार खम्बों पर मन्दिर बना है। इसका दूसरा मन्दिर कोटले में है। निरमण्ड तहसील के कतमोर गांव में लोहड़ी नाग का मन्दिर है।

इसे पांडव पुत्र वीर अभिमन्यु का अवतार भी माना जाता है। आनी के बुछैर में काली नाग है जिसे काड़ी नाग के नाम से जाना जाता है। बंजार के जिभी में पहाड़ी शैली में निर्मित शेष नाग का मन्दिर है। डाहुली गांव में चंजाली नाग का स्थान है। माहनी गांव में रिसालू नाग का डेहरा है। चकुरठा में कमरुनाग अवस्थित है। इसी तरह डिंगचा में काली नाग, शोधा में चोतरु नाग, तोंदला में शुकली नाग, एर में नाग सरगण, द्रिम्बला में शेष नाग, कुंगश में पनेऊली नाग, तरवला में तराली नाग, कनौण गांव में आयडू नाग, कण्डी में करथनाग, बड़ाग्रां, पौलदी तथा दलियाड़ा कोटला में छमाहू नाग, सुचैहण में सुचैहणी नाग, थाटी बीड़ में वासुकि नाग के मन्दिर हैं।

मण्डी ज़िले में कमरु नाग एक शक्तिशाली नाग देवता के रूप में पूजित है। कमरु नाग की उत्पत्ति के सम्बन्ध में जनश्रुति है कि एक निस्सन्तान दम्पति ने पुत्र प्रप्ति के लिए वासुकि नाग की अराधना की। वासुकि नाग की कृपा से नाग भक्तिनी नारी के गर्भ से नौ नागों ने एक साथ जन्म लिया। वह उनको एक घड़े में रखा करती। एक दिन एक अन्य महिला उनके घर आई। उसने उत्सुकतावश घड़े का मुंह खोला तो उसे सांप नज़र आये। वह हड़बड़ा गई। हड़बड़ी में पिटारा उसके हाथ से छूट गया। सांप चूल्हे में जलती आग में गिर गए। आग की गर्मी से सभी सांप अलग–अलग स्थानों को भाग गए। उनमें से एक सर्प कमरु की पहाड़ी में एक झील के किनारे पहुंचा और घास में छिप कर बैठ गया। बाद में माता पिता ने उसे ढूंढा और उसका नाम कुंवरु रखा। जहां पर यह नाग छिपा बैठा था वहां पर श्रद्धालुओं ने इसका एक मन्दिर बनवाया। मन्दिर देवदार की लकड़ी के खम्बों पर निर्मित है जो चारों ओर से खुला है। इसमें कोई दीवार नहीं है। इसके बीचों बीच नाग देवता की पत्थर की मूर्ति अवस्थित है। मन्दिर के सामने लगभग आधे किलोमीटर के घेरे में झील फैली है। श्रद्धालु लोग झील में भेंट स्वरूप रुपये-पैसे तथा सोने-चांदी के जेवरात डालते हैं। मन्दिर के चारों ओर देवदार तथा खरशू-रखाल के पेड़ विद्यमान है।

माहूं नाग भी हिमाचल प्रदेश का शक्तिशाली नाग देवता है। इसके मन्दिर व स्थान हिमाचल प्रदेश के अधिकांश स्थानों पर विद्यमान हैं। पूरे प्रदेश में इसकी १०८ देउठियां अर्थात् स्थान माने जाते हैं। इसका मूल स्थान मण्डी जिला के करसोग क्षेत्र में बखारी नामक स्थान पर माना जाता है। माहूं नाग महाभारत के दानवीर कर्ण का अवतार माना जाता है। बखारी में माहूं नाग देवता का पहाड़ी शैली का तीन मंज़िला मन्दिर है। कहते हैं कि सुकेत के राजा श्याम सेन ने यह मंदिर १६२०—१६५० में बनवाया था। यहां पर प्रतिवर्ष २, ३ ज्येष्ठ को मेला लगता है जिसमें दूर-दूर से श्रद्धालु देवता की चाकरी हेतु आते हैं। बड़ेओग, जोगा कुफरी, सुनोग, घनेरा, परेसी, भवाड़ा में भी माहूं नाग के स्थान है। माहूं नाग के सम्बन्ध में कहा जाता है—

नागा बोला माहुंआ, करवाण तेरे नावें
तरगते उभरे शुभरे, जरह झवाठे चकरे पावें।

मण्डी के ही खणी गांव में छमाहूं नाग का मन्दिर पहाड़ी शैली में बना है। इस मन्दिर की ढलवां छत के शीर्ष पर बदोर के ऊपर लकड़ी के तीन कलश लगे हैं। इसके काष्ठ स्तम्भों, छतीय फर्श तथा दरवाज़ों की चौखटों पर सुन्दर नक्काशी हुई है। मन्दिर के अन्दर नाग देवता की पत्थर की मूर्ति विद्यमान है। देवता का रथ प्राय: भण्डार में रखा जाता है। विशेष त्योहारों तथा पर्वों पर ही इस मन्दिर में देवता का रथ रखा जाता है। यह नाग देवता ब्रह्मा का अवतार माना जाता है जिसने नाग देवता के रूप में जन्म लिया है। बाली चौकी से चार किलोमीटर की दूरी पर धामण में महेश रूपी छमाहूं नाग का मन्दिर भी पहाड़ी शैली में बना हुआ है। बदार क्षेत्र के खणी गांव में देव नागणु का स्थान है। ज्वालापुर शनोड़ में वरनाग का मन्दिर है। कहते हैं कि बेर के पेड़ के नीचे यह नाग देवता प्रकट हुआ था। इसलिए इसका नाम वरनाग पड़ा। इसी क्षेत्र के धारा गांव में धारा नागिन, रेहड़धार में वरुनाग, तथा टेपर गांव में शेष नाग पूजित हैं।

शिमला ज़िला में भी कुल्लू की तरह ही नाग देवताओं के जन्म की कहानी प्रचलित है। कोटखाई के ग्राम पचरोटी (चढियाणा) में घूण्डा नाग की माता चोल टिब्बा की पहाड़ी में भूरी देवी के रूप में पूजित है। कहते हैं कि भूरी देवी ने एक सांप को जन्म दिया जो एक कन्दरा में रहने लगा। एक दिन एक साधु वहां आया और उसने नाग को मारकर उसके तीन टुकड़े किए। इन तीन टुकड़ों में शीर्ष वाला भाग घूण्डा में, बीच वाला भाग ममराड़ा तथा तीसरा भाग पजेउल पहुंचा जहां इनको नाग देवता के रूप में पूजा जाने लगा। इन तीनों गांवों में इनके मन्दिर हैं। घूण्डा गांव में देवता का तीन मंज़िला मन्दिर बना है। यह मन्दिर एक हज़ार वर्ष पुराना माना जाता है। मन्दिर के प्रवेश द्वार में नाग देवता की आकृतियां अंकित हैं। द्वार को पार करने के पश्चात् मध्य में खुला प्रांगण है और दायें बायें कक्ष बने हैं। बाईं ओर का कक्ष सराय के रूप में और दाईं ओर वाला कक्ष मन्दिर के भण्डार के रूप में प्रयुक्त होता है। मन्दिर की पहली मंज़िल के आधार के मध्य एक सांप को टंकित किया गया है। लगता है समस्त मन्दिर का भार यह सर्प अपने ऊपर उठाये हुए है। मन्दिर में प्रयोग हुई लकड़ी की नक्काशी में ब्रह्मा और विष्णु की आकृतियां उकेरित हैं। मन्दिर के दाईं ओर नाग माता अपने नाग को स्तनपान कराती हुई दिखाई देती है। मध्यभाग में कृष्ण और गोपियां नृत्य मुद्रा में उकेरित हैं। मूल प्रतिमा तीसरी मंज़िल में रखी रहती है। यहां तक पहुंचने के लिए भीतर से ही सीढ़ी बनी हुई है।

सरपारा के नौ नागों के जन्म की कथा भी कुल्लू के अठारह नागों की तरह ही है। ये नौ नाग बण्डा, सराहन, जंघोरी, देथवा, काऊंबिल, तूनण, खरगा, माहू, जाहरुनाग तथा धारा सरगा में पूजित हैं। सरपारा का मन्दिर पहाड़ी शैली में निर्मित है। यह मंदिर देवता जल, उनकी मां लमदूदी तथा नौ नागों से सम्बन्धित है। मन्दिर के दरवाजों व छत में सांपों की अनेक आकृतियां बनी हुई हैं। इस परिसर में छोटे बड़े मिलाकर कुल छ: मन्दिर हैं। पहला मन्दिर एक मंज़िला है जो लकड़ी व पत्थर की काठकुणी की चिनाई से बना है।

कहते हैं कि जहां मन्दिर बना है वहां एक सौर था। जब देवता ने मन्दिर बनाने की इच्छा व्यक्त की तो देवता का रथ इस स्थान पर गया और वहां पर एक सांप प्रकट हुआ। लोगों ने देवता की इच्छा के अनुसार इस स्थान पर मन्दिर बना लिया। दूसरा मन्दिर देवता की पालकी रखने के लिए है। तीसरा मन्दिर महासू की कोठी के नाम से जाना जाता है। यह तीन मंज़िला है। इसे ५०० वर्ष पुराना माना जाता है। इसकी सबसे ऊपर की मंज़िल में महासू देवता की कोठरी है। चौथा मन्दिर महासू देवता की कोठी के दक्षिण की तरफ है। इसे स्थानीय भाषा में देवरा कहते हैं। इस देवरे में देवदार के चार फुट व्यास वाले खम्बे खड़े हैं। प्रत्येक स्तम्भों में देवता चोरु, बड़ा देवता, नया देवता तथा महावीर देवता की स्थापना की गई है। पांचवा मन्दिर देवता की ठौड़ के नाम से जाना जाता है। छठा मन्दिर सरपारा से चार किलोमीटर की दूरी पर धारला गांव में है। यह देवता जल का मूल मन्दिर माना जाता है।

रामपुर बुशहर से ३५ किलोमीटर की दूरी पर कीम गांव में देवता नगेला का मंदिर है। मन्दिर लकड़ी, पत्थर तथा गारे से पहाड़ी शैली में बना है। मन्दिर का निर्माण बुशहर राजघराने ने किया है। कहा जाता है कि रामपुर के राजा की बीमार बेटी का उपचार कीम गांव की एक लड़की जो राजा के महल में काम करती थी ने नगेला देवता से करवाया था। देवता नगेला के आशीर्वाद से राजकुमारी के ठीक होने पर राजा ने कीम में आकर देवता नगेला का मन्दिर बनवाया था। कुन्नी गांव में कुन्दड़ा नाग का मन्दिर है। शमयापुरी नाम से विख्यात गांव शनेरी में जाहरूनाग का तीन मन्ज़िला मन्दिर पहाड़ी शैली में बना है। यह नाग कराड़ी गांव में एक जमींदार के खेत में प्रकट हुआ था। कराड़ी में इसका स्थान है जिसे नाग देहरी कहा जाता है।

किन्नौर में भी १८ नाग देवताओं के प्रकट होने की कथा प्रचलित है। यहां ये किसी तालाव अथवा झील या झरने से प्रकट हुए भी माने जाते हैं। किन्नौर के प्रमुख नाग देवताओं में सापणी, ब्रुआ और पौंडा के नाग हैं। सांगला गांव का बैरिंग नाग बोराल नामक स्थान में प्रकट हुआ है। सांगला में बैरिंग नाग के दो मन्दिर बने हैं। बशेरु में बसेहरु नाग का स्थान है।

इस तरह पश्चिमी हिमालय क्षेत्र में नाग देवताओं के असंख्य मन्दिर व स्थान इनके वर्चस्व की पुष्टि करते हैं कि किस तरह ये यहां के लोगों के साथ आत्मसात होकर पूजित हुए हैं।

गांव परगानू डा०खा० भूंतर
तहसील व ज़िला कुल्लू हि०प्र०
पिन १७५१२५

✍ लोक धारा

विष्णु की देव समाज को शिक्षा

● दीपक शर्मा

कुल्लू जिला के निरमण्ड तहसील के प्राचीन ऐतिहासिक गांव निरमण्ड में यह लोक गाथा प्रचलित है कि मोघी मृत्युलोक में विष्णु भगवान की परम् भक्तिनी थी। समाज द्वारा निम्न श्रेणी में समझी जाने वाली भक्त मोघी चनाड़ी को विष्णु भगवान ने सबसे पहले दर्शन दिये थे। मोघी की श्रद्धा और भावना को देखकर विष्णु भगवान उसकी बात को नहीं काटते थे। मोघी जो कुछ भी मृत्युलोक में देखती थी उसका सारा वर्णन विष्णु भगवान को सुनाए बिना उसकी रोटी हजम नहीं होती थी। खैर, विष्णु तो ठहरे नवखण्ड की खबर रखने वाले फिर भी वह अनजान बन कर सारा श्रेय अपने भक्तों को देते हैं। उनके लिए ना कोई बड़ा ना कोई छोटा। विष्णु अवतार कृष्ण, सुदामा मैत्री, श्रीराम द्वारा भीलनी के जूठे बैर खाना, केवट मैत्री प्रसंग उसी परम स्नेह व श्रद्धा की शृंखला की कड़ियां हैं। आखिर उस मोघी को पैदा करने वाला भी विष्णु ही है। परन्तु गलतफहमी का शिकार देव समाज जातिवाद के घेरे में आकर कथा को इस मोड़ पर खड़ी कर देता है कि विष्णु भगवान देव समाज की बिरादरी से बाहर हो जाते हैं। परन्तु पालनहार विष्णु भगवान देव समाज की इस जातिवादी मनोवृति पर ऐसा कुठाराघात करके ऐसा सबक सिखाते हैं कि सारा देव समाज विष्णु के चरणों में नतमस्तक हो जाता है। इस सारे घटनाक्रम की जड़ है मोघी। आखिर यह मोघी कहां से टपक पड़ी जिसने इतना बड़ा झमेला खड़ा कर दिया। जब विष्णु भगवान ने सम्पूर्ण नव खण्ड की सारी व्यवस्था कर दी तब विष्णु भगवान के मन में मृत्युलोक पर अपने लिए मौहुए को बनाने का विचार आया। उसके ही निर्माण के लिए विष्णु को लोहे के गज़ (छड़ी) की आवश्यकता पड़ी।

देऊ गौ ना हौ गौरवे घरैलड़ै।
नौई गौ मूठा गौरूवा काडी।
तेथो चाणों लोहे ओ गौज़ा।
ज़ेबी गौ काडी तेउए नौए मूठा गौरूवा।
तेथा का उपनी मोघी चनाड़ी।
बैणै गौ बोला मोघी चनाड़ी।
मुंए गौ देवा तैं किजू लै चाणी।
सौए गौ ते उए पैरो ए पौड़ी।
गौरवे ए गोदा लागी कोहुए फीशा।
ते थो देवे चाणो लोदिया चनाडू।
मेरे गौ देवा रौक्शा कौरे द्वारौ ना

मौने गौ सूंचा इशुरा कगारी।
वैने गौ बोला विषणु नरैणा।
आपू आहूं तेरे लै आंगणे।

गज़ को ढूंढते विष्णु भगवान गरना नामक झाड़ियों के बीच गये। उसने वहां से नौमुठी अथार्त् लगभग एक मीटर गरना की टहनी निकाली जिसका लोहे का गज़ बना। उस गरना की टहनी से अति सुंदर चंद्र मुखी स्त्री निकली जिसका नाम रखा मोघी चनाड़ी (चनाड़ी अर्थात् चान्दनी की तहर सुन्दर)। पैदा होते ही मोघी कहती है कि हे देव! तूने मुझे क्यों पैदा किया? मेरे साथ दूसरा कौन है? अचानक उस टहनी के तने से लाल रंग का पानी निकला जिसका विष्णु भगवान ने चनाड़ू बनाया। वह भी अति सुंदर था। मोघी विष्णु के पैर पर गिरकर कहती है कि हे देव! मेरी रक्षा करना तथा मेरा उद्धार करना। विष्णु ने कहा कि हे भक्तिन मोघी! मैं तेरे आंगन में कभी अवश्य आऊंगा, मुझे पहले अपने लिए मौहुए कोठि बनानी है।

उधर देव समाज पर गलतफहमी का भूत सवार हो गया। वे विष्णु भगवान को संदेह की दृष्टि से देखने लगे तथा मोघी और विष्णु के बारे में उल्टी सीधी बातें करने लगे। झूठी अफवाहों का बाजार गर्म हुआ। अष्ट कोटि देवी देवताओं ने एक बैठक बुलाई तथा विष्णु को अपनी जात बिरादरी से बाहर निकालने का निर्णय लिया।

देवा देवे खुंबाड़ी बेशी, वैणै बोला देवा देवे सोभा।
एऊ देवा दि लाणों बटाड़ा म्हारै, देउ कौरनौ खुम्बड़ी का बाहरै।
सौदेऊ डांडौ उजुऔ ज़ाडूडै, सौ देऊ नाहौ पिढाड़ी बाड़ोटी।
देवे औंगनी पेटा लै घूटी रे, आन भौरौ गौरविए गांज़ै
एहा आली डीबी पाणी भौरौ देवै,

विष्णु भगवान को बिरादरी से बाहर कर दिया। विष्णु भगवान ने आग पेट में तथा अनाज गरना के खोल में भर दिया। चमड़े के खलटू में पानी भर दिया। चुपचाप बिना कुछ कहे विष्णु भगवान बैठक से उठे और बाहर निकल पड़े।

देवे सींवीं ठारा खौंदैए थैली।
ते थे गौ पाए पांज बाशौंतरा।
ते थे गौ पाए चार भाई चौभू,
नौहे गरौहा, पांज भाई पाण्डवे,
छौए कारेगड़ा, साते भराड़ी, आठे भाई वार,
देऊ नाहौ गौ एकी सरोगै, दूजे, चीए ...... सातिए सरोगै।
सातिए सरोगै सौरगा डवारी। सौरगा डवारी ते ऊए हूडी हेरी हूडी।
सौरगे डवारिए दांतू केरो पाटड़ौ।
ते था गाहे जो सूने केरो पाटड़ौ।
ते था गाहे जो रूपै केरी थांणी।
ते था गाही गाही जो वेशी थाकौ वेशी।

फेरदी बेशी जे सांउणी केरे माड़ा।
तीना गौ सौंगे जूंए खेला पासैं।
साउंणी केरो जुंआ पौड़ा जुंआ।
देवा केरो पौदा वौड़ा पौदा।

विष्णु ने एक चाल चली। १८ खाने की एक बड़ी थैली बनाई। उस थैली में पांच वशंतर अर्थात् २ बांसुरी, २ ढैंकुली (छोटे ढोलक), चार चम्भू देवता, पांच पांडव, सात भराड़ी देवियां, छः कार कारिंदे, आठ वार, नौ ग्रह, दस नाग, ग्यारह कादशी, बारह राशि, त्रयोदशी, चतुदर्शी, पूर्णिमा, अठारह नारायण बंद कर दिये। उस थैली को लेकर विष्णु सातवें आसमान में पहुंचा। सातवें आसमान में चांदी की ठाहरी (विश्राम स्थली) बनी है जिस पर सोने का सिंहासन है। विष्णु उस सिंहासन पर बैठा तथा उसके चारों तरफ कालियां बैठ गईं। कालियाओं के साथ जुआ पासा खेलने लगे। कालियां जीतती हैं और विष्णु हारता है। इसी प्रकार वे अपना समय काटते हैं। आगे क्या होता है :

माताड़ोगे हूमा लागै जौगा ना।
बैणे बोला देवे देवे सोभा।
कुण गौ नै ही विष्णु नरैणा।
वैणै बोला देवा देवा सोभा।
तेऊ गौ घाट जौग ना हौआ।
कुण गौ नाहा तेऊ बदाणु।
डौडू बनायक घौए कै नैही एथी।
कुण नाहा तेऊ बदाणु।
तेऊ बदाणु नाहा रैहणा बिहाए।
चालदी हुई जौ रैहणा बिहाए।
नांही गौ गेई सौ डौडू केरे आंगणे।
वैणे बोला रैहणा बिहारा।
चा़ल डौडुआ माताड़ोगे हूमा लागै जौगा।
नाहे गौ डौडुआ देऊ बदाणु।
सौतरा देऊ भूखै मौरा चीशै।
आगी बिन धूपू नै ही धारा।
आना घाट लाडू नैंही भोजना।
पांणी घाट बीड़ी नैही बकाड़ी।

मृत्युलोक में हवन यज्ञ होने लगे। सभी देवी देवताओं ने फिर एक आपातकालीन बैठक बुलाई। बातचीत हो रही है कि विष्णु के बिना यज्ञ सम्पूर्ण नहीं होगा। अब विष्णु भगवान को मनाने के लिए किसे भेजा जाए। देवी देवता कहने लगे कि विष्णु को बुलाने तो केवल डौडू बनायक ही जा सकता है। क्योंकि उसी के पास सातवें आसमान का ताला खोलने की चाबी नौड़ियर ताड़ है। रैहण बिहार वहन को डौडू के घर

भेजा जाता है। रैहण डौडू से कहती है कि मृत्युलोक में देवी देवता भूखे प्यासे बिलख रहे हैं। इसलिए कुछ हवन यज्ञ करना पड़ेगा तथा तुझे विष्णु भगवान को बुलाने जाना पड़ेगा। उससे क्षमा मांगनी पड़ेगी।

चा़लदौ हूऔ डौडू बनायका।
गाची पाऔ नौड़िआरा ताड़ा।
डौडू नाहौ एकी सरोगे, दूजे , चीए, चौथे
पांजिए छौहिए सरोगे। डौडू नाहो पूर्वा बोलै।
डौडू नाहौ पौछमे बोले, देऊ सरोगी लोड़ी ना मैड़ा।
डौडू नाहौ सातिए सरोगै, सौरगा डवारी।
सौरगा डवारी हूडी नी हौआ।
गाची ते उए नौडिअर ताड़ काडौ।
खोलणी लाई सौ सौरग डवारी।
पाटा चौरूंए वेषौ नौ हौआ।

सातवें आसमान के द्वार खोलने की चाबी लेकर डौडू चल पड़ा। सारे आसमान चारों दिशाओं में घूमा फिर। चप्पा-चप्पा छान मारा। अंत में सातवें आसमान का द्वार खोला तथा देखा कि विष्णु भगवान बड़े आनंद में पाटा चौरूं (स्वर्ण सिंहासन) में बैठा है।

देवे नौदरा डौडू दी लागी।
वैणे गौ बोला बिष्णु नरैणा।
तुए गौ डौडुआ किदरा का आऔ।
वैणे बोला डौडुआ ज़वारा।
माताड़ोगै लोड़ा लागी तेरी।
सौतरा देऊ जे भूखै मौरा चीशै।
आग चोरी तैं शुक्लै चड़ैडै।
पाजी गौ चोरौ तैं गौरूवे घरैलड़ै।
आन गौ चोरौ तैं खोडुए खड़ाई।

ज्यूं ही विष्णु की नजर डौडू पर पड़ी वह कहने लगे अरे डौडू भाई कैसे आना हुआ ? मृत्युलोक में सभी राजी खुशी तो हैं। डौडू बोला, हे बड़े देवता! मृत्युलोक में त्राहि, त्राहि मची है। सभी देवी देवता भूख प्यास से बिलख रहे हैं। तूने आग सफेद पत्थर में छिपा दी, पानी गरना के खोल में छिपा दिया तथा अन्न अखरोट के खोल में छिपा दिया। मृत्युलोक में यज्ञ करना है जोकि तेरे बिना सम्पूर्ण नहीं हो सकता।

बैणे गौ बोला बिष्णु नरैणा।
छाडा ए हौलिओ ढाई घौड़ी।
वैणै गौ बोला सोड़ा सरगोपी।
माताड़ोगै मोघी आ चनाड़ी।
सामी गौ म्हारे छाडा बटाड़ी।

वैणै गौ बोला बिष्णु नरैणा।
छाडा गै हौलिओ ढाई घौड़ी।
दोत के पौहरे पौला लामू थारो।

विष्णु भगवान अपने इर्द-गिर्द बैठी सोलह सरगोपियों (आसमान की गोपियां) से कहता है, "हे सरगोपिओ! मुझे अढ़ाई घड़ी मृत्यु लोक जाने की इजाजत दो।" ईर्ष्या से जलती भुनती हुई सरगोपियां कहती हैं, "हे स्वामी! मृत्यु लोक में छोटी जात की एक अति सुंदर मोघी चनाड़ी रहती है। कहीं वह मोघी तुम पर डोरे डालकर तुम्हें अपवित्र न कर ले।" विष्णु कहते हैं, "हे सखियो। सुबह के प्रहर की नींद मैं आप के नाम सोऊंगा।"

वैणे बोला सोड़ा सरगोपी।
नाहे गौ सामिआ औरे माताड़ोगे।
चालदौ हुऔ इशुरा कगारी।
नाही गौ गैओ उछटै कांडै।
तिदी गौ मैड़ी सौ मौघी चनाड़ी।
वैणै गौ बोला इशुरा कगारी।
जैए गै हूए सै धौरमा पूरै।
एवै गै चालौ मूं देवा देवे सोभा।
मोघीए घौरा का चाकौ पाणी केरो घौड़ो।

गोपियों ने मृत्युलोक जाने की अनुमति दे दी। ऊंचे नीचे पर्वतों को पार करता हुआ विष्णु भगवान मोघी के घर के पास पहुंच गया। मोघी विष्णु के दर्शन करके धन्य हो गई। विष्णु ने कहा, "हे मोघी! मैंने तुझे जो वचन दिया था वह आज पूरा कर दिया। अब मैं देवताओं की बैठक में जा रहा हूं।" विष्णु ने मोघी के घर से पानी भरा हुआ घड़ा उठाया और चल पड़ा देवताओं की सभा में।

आही गौ गैऔ सौ देवा देवे सौभै।
सौभे जौ देऊ खौड़ै हुए खौड़ै।
औष्टा कुड़ी देउतै तेउए पैरिए पौड़ा।
तेउए प्याउऔ मोघी ए घौरो पाणी।
औष्टा कुड़ीए सौविए सौ पीओ।
वैणै गौ बोला ईशुए कगारी।
मोघी ए घौड़े ओ पाणी पीओ तौ मैं।

विष्णु भगवान ज्यों ही देवसभा में पहुंचे, सभी देवता उसके स्वागत के लिए खड़े हुए तथा उस के पैर पर गिर पड़े। विष्णु ने उन को मोघी के घड़े का पानी पिलाया। विष्णु ने कहा, "अरे भाई! तुम तो सब अपवित्र हो गये क्योंकि तुमने मोघी के घड़े का पानी पिआ।" सभी देवताओं ने विष्णु से क्षमायाचना की।

गांव व डा. निरमण्ड
जिला कुल्लू, हि.प्र. १७२०२३

✍ गतिविधियाँ

इतिहास के सही ज्ञान के अभाव में सिकुड़ा देश-राम सिंह

इतिहास के तथ्यों के ज्ञान के अभाव के कारण देश के शासकों ने जो महान भूलें की हैं, उनके लिए भावी पीढ़ियां उन्हें कभी भी क्षमा नहीं करेंगी। यह बात त्रिगर्त अभ्युदय परिषद हमीरपुर के तत्वावधन में आयोजित गोष्ठी 'भारत की सुरक्षा एवं विदेश नीति' कार्यक्रम की अध्यक्षता करते हुए राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के वयोवृद्ध प्रचारक एवं ठाकुर जगदेव चन्द स्मृति शोध संस्थान के मार्गदर्शक ठाकुर राम सिंह ने कलियुगाब्द ५११२ (ई. सन् १८ अप्रैल २०१०) को कही। उन्होंने कहा कि किसी भी देश के शासनाध्यक्ष या प्रशासक के लिए यह जानना नितांत आवश्यक है कि उसके देश का इतिहास क्या है? उसकी सीमाएं कहां से आरम्भ होती हैं तथा कहां पर जाकर समाप्त होती हैं। उन्होंने रहस्योद्घाटन किया कि मंगोलिया निवासी आज भी गंगा जल का पूजन करते हैं। इस बात की पुष्टि संबन्धित राष्ट्र के राजदूत ने गत वर्ष सुजानपुर टीहरा में आयोजित कार्यक्रम के दौरान की थी। दूसरे विश्वयुद्ध के दौरान चीन के लोगों को लोहे के एक बंद बक्से में मनुस्मृति प्राप्त हुई थी जिससे इस बात का आभास हुआ था कि वहां का चंद्रवंशी राजा भारत से आया था।

साइबेरिया में हिंदू देवी देवताओं की प्रतिमा मिलना, रूस की भाषा में ४० प्रतिशत हिंदी भाषा का समावेश होना और सिंगापुर का नाम शृंगापुर होना इस बात का आभास दिलाता है कि प्राचीन भारत की सीमाएं सिंगापुर, साइबेरिया तथा अफगानिस्तान तक फैलीं थीं, जोकि कालांतर में देश के शासकों में इतिहास के ज्ञानाभाव के कारण सिकुड़कर यहां तक आ पहुँची हैं। ठाकुर राम सिंह ने कहा कि अगर देश के प्रथम प्रधानमंत्री जवाहर लाल नेहरू तत्कालीन रक्षा मंत्री कृष्णा मैनन के कहने के अनुसार न चलते तथा हिंदी चीनी भाई-भाई का राग न अलापते तो चीन १९६२ में भारत पर आक्रमण करने की हिम्मत न करता। उनका कहना था कि सरकार की दिशाहीन विदेश नीति के कारण ही इस युद्ध में भारत को चीन के हाथों पराजय का शिकार होना पड़ा।

कार्यक्रम के मुख्य वक्ता माननीय मुख्यमंत्री हिमाचल प्रदेश प्रो. प्रेम कुमार धूमल ने कहा कि भारत की विदेश नीति राष्ट्रीय हितों पर आधारित हो। हमें अपने सभी विकल्पों को खुला रखते हुए किसी भी भीतरी या बाहरी दबाव के सामने झुककर विदेश नीति का निर्धारण नहीं करना चाहिए। जब अमेरिका, जापान, इजराईल व चीन जैसे देश अपने देश कि हितों को ध्यान में रखकर अपनी विदेश नीति का निर्धारण करते हैं तो फिर हम ऐसा क्यों नहीं कर सकते? किसी भी राष्ट्र की उन्नति के लिए सही विदेश नीति का होना आवश्यक होता है।

ऊना जिला इतिहास लेखन कार्यालय का शुभारम्भ

देश का सही इतिहास समाज के सामने लाया जाना चाहिए और इस महत्त्वपूर्ण कार्य को नेरी शोध संस्थान कर रहा है। यह बात भाजपा के पूर्व अध्यक्ष एवं नेरी शोध संस्थान के निदेशक पण्डित जय कृष्ण शर्मा ने जिला ऊना के इतिहास लेखन के लिए खुले नवीन कार्यालय के शुभारम्भ के अवसर पर ''सन्दीपनी की आश्रम'' हरोली में ज्येष्ठ शुक्ल ९ कलियुगाब्द ५११२ (ई. सन् ६ जून, २०१०) को कही। कार्यक्रम का शुभारम्भ दीप प्रज्ज्वलन के साथ हुआ। इस शुभ अवसर पर नेरी

शोध संस्थान के मार्गदर्शक श्रद्धेय ठाकुर राम सिंह, कार्यक्रम के अध्यक्ष डा. एस.के. बंसल व अनेक विद्वान कार्यक्रम में उपस्थित रहे।

श्रद्धेय ठाकुर राम सिंह ने विद्वानों को सम्बोधित करते हुए कहा कि भारत का इतिहास १८७ करोड़ पुराना है। जिसका सही-सही ज्ञान होना आवश्यक है। ठा. जगदेव चन्द स्मृति शोध संस्थान समिति नेरी हि.प्र. ने यह कठिन कार्य अपने हाथ में लिया है। जिला इतिहास लेखन के अन्तर्गत हिमाचल प्रदेश के हमीरपुर, ऊना, बिलासपुर, शिमला, कुल्लू व लाहौ-लस्पिति को प्रथम चरण में चुना गया है। जिला ऊना के इतिहास लेखन एवं सामग्री संग्रहण के निमित ही आज इस कार्यालय का शुभारम्भ किया गया है।

उन्होंने कहा है कि इतिहास को लिखते समय महत्त्वपूर्ण १० बिन्दुओं पर ध्यान देना आवश्यक है। जो इस प्रकार है —

१. ***भारतीय कालगणना पर आधारित इतिहास लेखन :*** भारतीय काल गणना के आधार पर इतिहास लिखा जाना चाहिए, क्योंकि यह किसी जाति, सम्प्रदाय, व्यक्ति व घटना पर आधारित नहीं है। यह काल तत्त्व पर आधारित है। यही प्रकृति से लेकर मानव इतिहास लेखन के लिए उपयुक्त है। अत: युगों की वैज्ञानिक भारतीय कालगणना के आधार पर ही इतिहास लिखा जाना चाहिए।

२. ***ऐतिहासिक-अनैतिहासिक :*** भारत के इतिहास में कोई अनैतिहासिक काल खण्ड नहीं है। हमारा इतिहास सृष्टि रचना से आरम्भ होता है।

३. ***विज्ञान प्रधान-मिथक नहीं :*** भारतीय संस्कृति विज्ञान प्रधान है-मिथक नहीं। ज्ञान और विज्ञान के गूढ़ रहस्यों को समझने और समझाने के लिए यहां के ऋषि-मुनियों ने सत्य कथाओं और प्रतीकों को माध्यम बनाया, मिथकों का निर्माण नहीं किया।

४. ***इतिहास के दो बिन्दु :*** १. प्रकृति का इतिहास २. मानवों का इतिहास

५. ***भारत के इतिहास की प्राचीनता :*** यह सृष्टि रचना से आरम्भ होकर १९७ करोड़ वर्ष का है।

६. ***इतिहास कला नहीं अर्थपूर्ण विज्ञान है :*** यह हिरण्यगर्भ के विस्फोटित विश्वद्रव्य से प्रारम्भ होता है। इसकी सामग्री अत्यन्त प्राचीन है। यह कला नही ''अर्थपूर्ण विज्ञान है।''

७. ***घटित इतिहास है :*** घटित इतिहास है। परन्तु जो घटना समाज पर कुसंस्कार या घृणा पैदा करें या समाज को विघटित करे उस का लेखन वर्जित है।

८. ***सर्वपक्षों का इतिहास :*** इतिहास की भारतीय परम्परा के आधार पर मात्र राजवंशों व युद्धों का ही वर्णन होकर समाज के सर्व पक्षों यथा सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक, सास्कृतिक, आध्यात्मिक एवं राजनैतिक आदि सर्वांगीण चित्र प्रस्तुत करना अपेक्षित है।

९. ***संस्कृति का संवर्धन व धर्म का पोषक :*** भारतीय परम्परा के अनुसार इतिहास लेखन संस्कृति का संवर्धक व धर्म का पोषक होना चाहिए।

१०. ***इतिहास की भारतीय परिभाषा :*** इतिहास ज्ञान का वह शास्त्र है जिसके अध्ययन से व्यक्ति व समाज सुसंस्कारित होकर गुणवान बनता है और समाज को स्थिरता प्रदान करता है।

डा. एस.के. बंसल ने अपने अध्यक्षीय भाषण में आए हुए विद्वानों का धन्यवाद किया तथा जिला ऊना के इतिहास लेखन में सभी के सहयोग की अपेक्षा जताई।